# गुरुत्तं-8

प्रवचनकार

आचार्य वसुनन्दी मुनिराज

| | | |
|---|---|---|
| कृति | : | गुरुत्तं-8 |
| मंगल आशीर्वाद | : | परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज |
| प्रवचनकार | : | आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज |
| संपादन | : | आर्यिका वर्धस्वनंदनी माताजी |
| प्राप्ति स्थान | : | • श्री जम्बूस्वामी तपोस्थली, बोलखेड़ा (कामां) राजस्थान |
| संस्करण | : | प्रथम 1000 (सन् 2018) |
| प्रकाशक | : | निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति |
| मुद्रक | : | पारस प्रकाशन, दिल्ली<br>मो.: 9811374961, 9818394651, 9811363613<br>pkjainparas@gmail.com, kavijain1982@gmail.com |

# अनुक्रमणिका


| विषय | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| | पुरोवाक् | 4 |
| 1. | समृद्धि का राज | 8 |
| 2. | सार्थकता की तलाश | 20 |
| 3. | हकीकत का चिराग | 42 |
| 4. | अमृत वाहिनी | 64 |
| 5. | बंधन को वंदन | 83 |
| 6. | चेतना का प्राण | 101 |
| 7. | इन्द्रधनुष | 112 |
| 8. | सन्मार्ग का बीज | 123 |
| 9. | स्वर्ग का वैभव | 144 |
| 10. | मुक्ति का पात्र कौन? | 158 |

# पुरोवाक्

**पुव्वंगविउल विडवं वत्थुवसाहाहि मडियं परमं।**
**पाहुडसाहाणिवहं अणिओयपलाससंछण्णं।।**
**अब्भुदयकुसुमपउरं णिस्सेयसअमदसादफलणिवहं।**
**सुददेवदाभिरक्खं सुकप्पतरुं णमंसामि।।**

**आचार्य श्री पद्मनंदि**

अंग-पूर्व रूप विशाल विटप से संयुक्त वस्तुओं (उत्पादपूर्वादि के अन्तर्गत अधिकार विशेष) रूप उपशाखाओं से मंडित, श्रेष्ठ, प्राभृत रूप शाखाओं के समूह से सहित, अनुयोगों रूप पत्तों से व्याप्त, अभ्युदय रूप प्रचुर पुष्पों से परिपूर्ण, अमृत के समान निःश्रेयस रूप फलों के समूह से संयुक्त और श्रुतदेवता से रक्षणीय ऐसे श्रुतरूप कल्पतरु को नमस्कार करता हूँ अर्थात् श्रुतज्ञान की उपासना-आराधना कल्पवृक्ष के समान फल देने वाली है।

जिनशासन में सम्यग्ज्ञान का महत्त्व है, क्योंकि वह मोक्ष का उपाय है। स्वाध्याय आत्म स्वरूप के परिज्ञान का श्रेष्ठतम साधन है। चारित्रसार ग्रंथ में लिखा है कि अपनी आत्मा का हित करने वाला अध्ययन करना स्वाध्याय है। एकान्तवाद के समर्थक शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय नहीं है क्योंकि उनसे मिथ्यात्व का पोषण होता है, आत्मा का अहित होता है। अनेकांत के प्रतिपादक जिनागम का, नय विवक्षा से पठन-पाठन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय से धर्म ध्यान में प्रवृत्ति होती है और आर्त्त-रौद्र ध्यान से निवृत्ति होती है।

आचार्य श्री सकलकीर्ति जी ने ज्ञान की महिमा का वर्णन

करते हुए लिखा है कि ज्ञान से मनुष्य की निर्मल कीर्ति तीनों लोकों में फैल जाती है, इस ज्ञान से ही तीनों लोकों में मान्यता बढ़ जाती है। ज्ञान से ही उत्कृष्ट विवेकशीलता आ जाती है। ज्ञान से केवलज्ञान प्रकट हो जाता है। ज्ञान से ही पूज्यता के पद प्राप्त होते हैं, ज्ञान से ही तीनों लोकों की लक्ष्मी प्राप्त होती है और ज्ञान से ही तीर्थंकर और इंद्रादि श्रेष्ठ पदों की प्राप्ति होती है। उस ज्ञान के विषय में श्री वट्टकेराचार्य मूलाचार में प्रतिपादित करते हैं-

**णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि।**
**णाणेण कुणदि णाणं णाणाविणीदो हवदि एसो॥368॥**

जो ज्ञान शिक्षित करता है, गुणी बनाता है, पर को सदुपदेश देने में सहायक होता है, जिससे न्याय किया जाता है, वह ज्ञान विनयी होता है।

सम्यक्ज्ञान वह प्रकाश स्तंभ है जिसके द्वारा हित-अहित, कुमार्ग व समीचीन मार्ग, हेय-उपादेय का परिज्ञान स्पष्टतया किया जा सकता है। इसीलिए आचार्यों ने आत्महित के इच्छुक महानुभावों को स्वाध्याय की प्रेरणा भी दी। किन्तु कई बार शास्त्रों का प्रमाण वा अभ्यास रहित होने से आगमिक शब्दों से भयभीत होने से व्यक्ति ग्रंथों के स्वाध्याय का साहस नहीं कर पाता। फिर भी कल्याणार्थ ग्रंथ के सार को तो ग्रहण करना इष्ट ही है। अतः ग्रंथों का सार जो गुरुओं के प्रवचन में दृष्टिगोचर होता है उनका अनुपालन करना कल्याण के लिए पर्याप्त है। गुरुओं की निर्मल मंदाकिनी के समान कल्याणकारिणी मीठी वाणी सहजता से हृदयंगम हो जाती है। उन सरल, सहज शब्दों में ग्रंथों के सार को सरलता से समझकर सम्यक्मार्ग पर अग्रसर

हुआ जा सकता है।

प्रस्तुत कृति "गुरुत्तं भाग-8" परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के अजमेर 2018 चातुर्मास में रविवार को हुए मीठे प्रवचनों का ही संकलन है। गुरुवर श्री के मिष्ट वचन बिना किसी अवरोध के कर्णमार्ग से गुजरते हुए सीधे हृदय में प्रवेश करते हैं जो मानव को मानवीय स्तर तक पहुँचाने व पुनः भगवान् तक बनने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। इसी मार्गदर्शन को प्राप्त करने सहस्रों लोग गुरुवर श्री के चरण सान्निध्य में पहुँचते थे। अपार जनसमूह प्यासे चातक की तरह टकटकी लगाकर गुरुवर की ओर निहारता था और इतना ही नहीं उनकी अमृतमयी वाणी से चित्त की तृषा को शांत करने का पुरुषार्थ व प्रयास भी किया। उन मीठे प्रवचनों के समय मार्ग पर चलते हुए सामान्य जन भी वहाँ ठहरकर आचार्य श्री के शब्दों का रसास्वादन करते थे।

गुरुवर श्री के प्रवचनों में उनकी वाणी का श्रवण कर कभी जनमानस खिलखिला उठता तो कभी नयनों में अश्रुजल छलक आता।

गुरुवर श्री ने विभिन्न विषयों पर आबाल वृद्ध सभी के लिए अपना उपदेश दिया। "समृद्धि का राज" में मानों आत्म वैभव को प्राप्त करने हेतु कुंजी ही दे दी हो। "हकीकत का चिराग" मानो स्वयं को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण ही दिखाया हो। "चेतना का प्राण", "इंद्रधनुष" जैसे शीर्षकों में गंभीर विषयों को समाहित किया। "बंधन को वंदन" यह शीर्षक भी सभी को विस्मित करने वाला था कि बंधन भी वंदनीय हो सकता है

जबकि मुक्त होना जीव का स्वभाव है। वह बंधन जो वंदन को प्राप्त है उसका बहुत सुंदर व्याख्यान पूज्य गुरुवर ने किया है। इनके अतिरिक्त "सार्थकता की तलाश", "अमृतवाहिनी", "सन्मार्ग का बीज" आदि शीर्षक पर भी गुरुवर श्री ने आगम का साररूप अपना बहुमूल्य चिंतन जनमानस को दिया।

हमारे द्वारा प्रमादवश, अल्पज्ञतावश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो विद्वत्जन संशोधित कर पढ़ें, नीर-क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें। कषायों के वंचनार्थ व कल्याणार्थ गुरुवर श्री के प्रवचनों का संकलन 'गुरुत्तं-8' के रूप में किया गया है।

इस पुस्तक की पांडुलिपी तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुजनों को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमन....

श्री शुभमिति मार्गशीर्ष कृष्ण 6 — ॐ ह्रीं नमः
वीर निर्वाण संवत् 2544 — आर्यिका वर्धस्वनंदनी
श्री दिगंबर जैन मंदिर — 28 नवंबर, 2018
बैंक एन्क्लेव, लक्ष्मीनगर (दिल्ली)

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी
आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के
मीठे प्रवचन का संकलन

# गुरुत्तं भाग 8

# समृद्धि का राज

धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!

जीवन में समृद्धि का राज क्या है? बिना सूत्रों के, बिना रहस्यों के रहस्यपूर्ण वस्तु की सम्प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार के सभी व्यक्ति समृद्धि को चाहते हैं और अपने-अपने तरीके से उसे प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ भी करते हैं किन्तु समृद्धि सबको प्राप्त नहीं हो पाती। संसार में कुछ विरले ही व्यक्ति हैं जो समृद्धि को प्राप्त कर पाते हैं। संसार में बलशाली व्यक्ति बहुत हैं जरूरी नहीं वे समृद्ध हों, संसार में पुरुषार्थी व्यक्ति भी बहुत हैं जरूरी नहीं वे समृद्ध हों, रूपवान् व्यक्ति भी बहुत हैं, सत्ता वाले भी बहुत हैं अन्य बाह्य वैभव को प्राप्त करने वाले भी बहुत व्यक्ति हैं किन्तु जरूरी नहीं ये सभी समृद्ध हों। समृद्धि के मायने यह समझें कि जिसे प्राप्त करके आत्मा में तृप्ति का अनुभव हो, संतुष्टि का अनुभव हो। जिसे प्राप्त करके अन्य किसी को प्राप्त करने की आकांक्षा न रहे।

जिस व्यक्ति की जैसी भावना होती है वह उसको पूर्ण करने में अपनी तृप्ति मानता है। यदि वह तृप्ति शाश्वत है तो उसे दूसरी चीज माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ती और क्षणिक है तो पुनः एक की पूर्ति होने पर दूसरी चीज माँगने लगता है। प्यासा व्यक्ति पानी माँगता है पानी मिलते ही वह अनुभव करता है भूख भी लगी है कुछ खाना है, यदि खाने को मिल गया तो सोचता है पहनने को वस्त्र मिल जायें, वह मिल जाये तो सोचता है अब रहने को मकान मिल जाये। पुनः सोचता है प्रतिष्ठा को प्राप्त करूँ फिर सोचता है मेरा कुटुम्ब परिवार भी हो, फिर

सोचता है मेरे अधीनस्थ भी हों और ऐसे सोचते-सोचते बहुत आगे निकल जाता है। वह संसार के कई बार चक्कर लगा लेता है किंतु समृद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता।

महानुभाव! समृद्धि शब्द दो शब्दों से मिलकर के बना है। मूल शब्द है ऋद्धि उसमें सम् उपसर्ग लगाया जिससे समृद्धि शब्द बना। ऋद्धि शब्द का अर्थ होता है लब्धि, उपलब्धि अथवा प्राप्ति। मुनिमहाराज तपस्या करके ऋद्धियों को प्राप्त करते हैं और कोई साधक साधना करके विद्याओं को सिद्ध करता है। विद्या और ऋद्धि में क्या अंतर है? विद्या लौकिक आकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिये प्राप्त की जाती है विशेष साधना के द्वारा। विद्यायें अनेक-अनेक विधि के द्वारा ली भी जा सकती हैं और दी भी जा सकती हैं किन्तु ऋद्धि आत्मा के क्षयोपशम का नाम है। वह क्षयोपशम अपनी ही साधना से प्रकट होता है। उस क्षयोपशम को कोई किसी को दे नहीं सकता और कोई किसी से ले नहीं सकता। इसलिये ऋद्धि वह है जो आत्मा में उत्पन्न होती है, तपस्या का जनरेटर जब चलता है तब ऋद्धियाँ अपने आप प्रकट होती हैं। और विद्यायें इनका आत्मा से संबंध नहीं है ये लौकिक विभूति से संबंध रखती हैं। ये लौकिक वैभव को देने में समर्थ हैं जिसकी जो क्षमता है उस प्रकार की वस्तु देने में समर्थ होती हैं।

ऋद्धि अर्थात् प्राप्ति/उपलब्धि। समीचीन उपलब्धि का नाम ही समृद्धि है। ऋद्धि शब्द में चाहे आपकी वृद्धि है या समृद्धि जिस किसी को प्राप्त करके आपको आत्मोत्पन्न आनंद की अनुभूति होती है उसे ही समृद्धि वा ऋद्धि मान लेना। और जिसे प्राप्त करके आपके चित्त में कुछ और प्राप्त करने की आग

प्रज्ज्वलित हो जाये तो समझ लेना अभी ऋद्धि नहीं है ये तो प्यास को न बुझाने वाला खारा जल है। लगता है जैसे प्यास बुझ जायेगी किंतु प्यास बुझती नहीं है वरन् बढ़ती है पेट भले ही भर जाये किंतु कंठ ज्यों की त्यों शुष्क बना रहता है।

संसार में अनेक विचारधारा वाले व्यक्ति हैं, विभिन्न धारणा-मान्यता वाले व्यक्ति हैं। संसार में जितने भी व्यक्ति हैं उन सभी के अलग-अलग लक्ष्य हैं किंतु समृद्धि अलग-अलग रास्तों से नहीं मिलती। स्वभाव की प्राप्ति का एक ही मार्ग था, एक ही मार्ग है और एक ही मार्ग रहेगा। विभाव को प्राप्त करने के लिये संसार में अनंतमार्ग थे, अनंतमार्ग हैं और अनंतमार्ग बने रहेंगे। विभाव के अनंत स्वरूप हैं ये जीव विभाव में अनंतपर्यायों में घूमकर आ गया किंतु स्वभाव को प्राप्त करने की केवल और केवल एक ही पर्याय है जिसे कहते हैं शुद्धपर्याय सिद्धपर्याय।

महानुभाव! उस शुद्ध व सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने का मार्ग है तप और साधना। तप व साधना का आधार है रत्नत्रय, रत्नत्रय का कारण है पूर्व में बाँधा हुआ सातिशय पुण्य, जिसके माध्यम से देव-शास्त्र-गुरु की संप्राप्ति होती है।

हम पहले भौतिक समृद्धि के बारे में भी चर्चा कर लें क्योंकि आध्यात्मिक समृद्धि की बातें तो आपको ऐसी लगेंगी जैसे किसी एल.के.जी., यू.के.जी. वाले विद्यार्थी के लिये एम.ए. की पुस्तकें पढ़ाना। पहले आपको आपका कोर्स बता देते हैं आप लौकिक-भौतिक समृद्धि चाहते हैं और उस भौतिक समृद्धि के मायने आपने 4-5 पॉइन्ट याद कर लिये हैं। आप कहते हैं-

**पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया।**
**तीजा सुख सुत आज्ञाकारी, चौथा सुख सुलक्षणा नारी।**

**पंचम सुख सदन हो अपना, छटवाँ सुख कर्ज रंच ना।**

आप मानते हैं पहली बात काया निरोगी हो, दूसरी बात घर में अपूर्व सम्पत्ति हो, तीसरी संतान आज्ञाकारी हो, जीवनसाथी वास्तव में जीवनसाथी हो, बिना बताये मेरे मन के राज को जान जाये। सच्चा जीवनसाथी वही है जो मेरे क्रोध के पीछे छिपे प्रेम को पहचान ले। मेरी मुस्कान में छिपे दु:ख को पहचान ले वही सच्चा जीवन साथी है इसके विपरीत जिस जीवनसाथी से शब्दों में अपने मन की व्यथा कहो तो वह जीवनसाथी नहीं, अर्द्धांगिनी नहीं। जीवनसाथी जब अनुकूल होता है तब संसार के समस्त दु:ख भी सुख में परिवर्तित हो जाते हैं। संतान यदि मनोनुकूल हो तो व्यक्ति कहता है मुझे स्वर्ग का सुख भी नहीं चाहिये, मेरे घर में स्वर्ग स्वयं आकर के वास करता है।

महानुभाव! तब भौतिक समृद्धि के लिये क्या करना है? आप जानते हैं सीधी-सीधी बात है हम जो चाहते हैं अगर उसी मार्ग पर चलें तो वह वस्तु प्राप्त हो जायेगी। यदि विपरीत मार्ग पर चलेंगे तो मंजिल की प्राप्ति नहीं होगी। आप जानते हैं सरसों को बोकर सरसों की ही प्राप्ति होगी, एक दाना बोते हैं अनेक दानें प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे ही हम जीवन में सुख शांति चाहते हैं, समृद्धि चाहते हैं तो दूसरों की सुख शांति में निमित्त बनने की कोशिश करें।

एक सर्व प्रामाणिक, शाश्वत वाक्य है-

**सुख देये सुख होत है, दु:ख देये दु:ख होत।**
**सौ मन साबुन खाय के, कोयला होत न श्वेत।**

यदि कोयले को सोडा साबुन से धोया जाये, खूब जल से

धोया जाये तब भी कोयला काले से श्वेत नहीं होगा। हाँ उस काले को श्वेत करने की युक्ति है। हमारी आत्मा काली है वह भी सफेद हो सकती है, हमारा मन काला है वह भी सफेद हो सकता है तप के माध्यम से, इच्छा निरोध के माध्यम से। ज्ञान की अग्नि, तपाग्नि, ध्यानाग्नि ये अग्नियाँ शोधन करने का कार्य करती हैं। जैसे किट्टकालिमा से युक्त स्वर्ण को अग्नि तपा करके शुद्ध बना देती है ऐसे ही कोयले को भी सफेद किया जा सकता है। अग्नि में यदि कोयला जला दिया जाये तो कोयले की कालिमा नष्ट हो जायेगी व धवल राख प्राप्त हो जायेगी।

ऐसे ही हमारे जीवन में जो कुछ भी विकार हैं उन्हें दूर करना संभव है, असंभव कुछ भी नहीं है। हम जीवन में समृद्धि चाहते हैं तो **'सुख देये सुख होते है, दुख देये दुख होत'** अर्थात् भगवान् महावीर स्वामी का वही सिद्धान्त 'जीओ और जीने दो।' हम गर चैन से जीना चाहते हैं तो भगवान् महावीर स्वामी ने कहा दूसरों को भी चैन से जीने दो, तो तुम्हारे जीने में कोई खलल नहीं आयेगी। तुम्हें शांति चाहिये तो तुम शांति से बैठ जाओ। तुम चाहते हो मेरे घर में मीठा आये तो दूसरों के घर में मिठाई बाँटना प्रारंभ कर दो, व्यवहार में लौटकर मिठाई ही आयेगी। कुये के पास खड़े होकर भगवान् का नाम लोगे तो लौटकर भगवान् का नाम आयेगा और गाली दोगे तो तुम्हारे कान में गाली आयेगी।

महानुभाव! यह ब्रह्माण्ड कुयें के सदृश है तुम्हारे श्रीमुख से जो शब्द निकलते हैं वे लौटकर तुम्हारे पास आ जाते हैं, कहीं नहीं जाते। शब्द पुद्गल हैं और संसार में विद्यमान छः द्रव्यों में से कोई भी द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता केवल पर्याय बदलती

रहती है। जो शब्द हम बोलते हैं वे शब्द आभामण्डल के साथ हमारे चारों तरफ घूमते रहते हैं। हमारी मनोवर्गणायें वचनवर्गणायें आस-पास रहती हैं क्योंकि शब्दों की शक्ति अचिन्त्य है। किसी का गला काट कर तुम सोचो कि कोई मेरे प्राण बचाने आ जायेगा, असंभव। यदि हम किसी को फँसायेंगे तो निःसंदेह हमें भी कोई फँसायेगा।

महानुभाव! जीवन का परम सत्य तो यही है इसे कोई नकार नहीं सकता, झुठला नहीं सकता कि हमें जो कुछ भी प्राप्त हो रहा है, संसार का कोई भी व्यक्ति, कोई भी भगवान् हमें कुछ नहीं दे रहे किंतु वे हमें अच्छे होने की प्रेरणा दे सकते हैं और बुरा व्यक्ति हमारे बुरे में निमित्त बन सकता है किन्तु रास्ता हमें स्वयं चलना पड़ता है। इसलिये हमें स्वयं को मीठा खाना है जिससे हमारा मुख मीठा हो, हमारे शत्रुओं के पास हजारों टन मिर्ची रखी हो तब भी हमारा मुँह चरपरा नहीं होगा। दूसरों के पास रखा नमक तुम्हारा मुँह खारा नहीं कर सकता न उनके पास रखा मीठा तुम्हारा मुँह मीठा कर सकता है। तुम्हें मिश्री तब मिलेगी जब तुम दूसरों को मिश्री खिलाना प्रारंभ कर दोगे।

पहले प्रयास अपनी तरफ से करना पड़ेगा उसका फल आगे मिलता चला जायेगा। समृद्धि का राज जीवन में केवल इतना सा ही है कि हम बस एक छोटा सा संकल्प ले लें कि हम दुनिया को नहीं खुद को बदलने की कोशिश करें। संसार में कोई भी इंसान पूर्ण नहीं होता प्रत्येक इंसान गलतियों का पुतला होता है।

**"धुला ना दूध का कोई, विकारों का बसेरा है।**
**उजाले में शराफत है, अंधेरे में अंधेरा है॥"**

संसार में प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई अच्छाई/बुराई अवश्य होती है। हम चलते हैं दूसरों को दर्पण दिखाते हुये ताकि उसके चेहरे के दागों को दूर कर दें किंतु हमारा स्वयं का चेहरा पूरा श्याम हो रहा हो, उसकी परवाह नहीं करते। दूसरों की थाली में पड़ी इल्ली तो हमें दूर से दिखाई दे जाती है पर स्वयं की थाली को चट करने वाली बिल्ली दिखाई नहीं देती।

महानुभाव! यदि हमने छोटा सा नियम ले लिया- हे शांतिनाथ भगवान् आपके सामने प्रयास करता हूँ, आप तो परमात्मा बन गये मैं अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये प्रयास करूँगा कि-

**स्वदोष शान्त्या विहितात्मशान्तिः, शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।**
**भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यैः, शान्तेर्जिनो मे भगवान् शरण्यः।।**

मैं अपने ही दोषों को शांत करूँगा, क्योंकि आपने भी अपने दोषों को, विकारों को, कर्मों को नष्ट करके ही उस समृद्धि को प्राप्त किया है। हे प्रभो! अन्तरात्मा से मन-वचन-काय से आपके श्री चरणों में, आपको साक्षात्वत् मानकर के आपके जिनबिंब के सामने मैं संकल्प करता हूँ कि अपने जीवन में से बुराईयों को दूर करने का प्रयास करूँगा। क्योंकि मैं ये अच्छी तरह से जानता हूँ कि मेरी बुराई मैं ही दूर करूँगा कोई और दूर नहीं कर सकता। जब तक मेरे अंतरंग से बुराई नहीं निकलेगी तब तक आप सम नहीं बन पाऊँगा। क्योंकि दूध में फिटकरी डालकर के मिश्री का स्वाद लेना असंभव है।

हमें यदि मिश्री की ख्वाइश है तो वह हमारे दूसरे हाथ में है पर हम उसे छिपाकर के बैठे हैं। प्रत्येक इंसान के हाथ में मिश्री

भी है और नमक भी है अब वह हम पर निर्भर करता है कि हम किस हाथ को छिपाते हैं और किसको बढ़ाते हैं। प्रकृति ने, हमारे पूर्वकृत कर्म ने हमें शरीर दिया है, वचन दिया है, सोचने को मन दिया है, पूर्व पुण्य ने हमें अच्छा कुल, अच्छी संगति आदि सब कुछ दिया है किन्तु इसका सदुपयोग तो हमें ही करना पड़ेगा। गाड़ी अच्छी मिल गयी तब उसमें बैठकर तीर्थ क्षेत्र की यात्रा भी कर सकते हो और अप्रशस्त स्थानों पर भी जा सकते हो। पैसा तुम्हारी जेब में है तुम चाहो तो अच्छी-बुरी दोनों वस्तुयें खरीद सकते हो सब आप पर निर्भर है।

बात इतनी है कि हम अपनी उपलब्धि का प्रयोग कहाँ पर करते हैं। जो अपनी उपलब्धि का सम्यक् उपयोग करता है वह जीवन में समृद्धि को प्राप्त कर लेता है, जो अपनी उपलब्धियों का सम्यक् उपयोग करना नहीं जानता वह ता उम्र समृद्धि के राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता। एक भव नहीं अनंतभव भी बीत जायें तब भी क्या फर्क पड़ता है क्योंकि कभी उल्टी चाबी से ताला नहीं खुलता। केन्द्र पर पहुँचने के लिये परिधि के चक्कर लगाना जरूरी नहीं है यदि हजारों-अरबों बार भी चक्कर लगाये तब भी केन्द्र की प्राप्ति नहीं हो सकती, केन्द्र की प्राप्ति के लिये थोड़ा सा अपने आप को बदलना पड़ेगा। केन्द्र तक पहुँचने के लिये परिधि को केन्द्र से नहीं मिला सकते अपितु हमें ही अपनी दिशा बदलकर केन्द्र तक पहुँचने का प्रयास करना पड़ेगा।

आत्म समृद्धि का राज, आत्म वैभव को प्राप्त करने का जो राज है उसे संसार के बहुतायत प्राणी जानते हैं किंतु मानते बहुत कम हैं। एक बार यदि व्यक्ति जान लेता है कि अग्नि जलाती है वह दूसरी बार उसे पकड़ता नहीं है। क्योंकि उसे ज्ञान हो

गया, राज की बात मालूम पड़ गयी कि अग्नि पकड़ने की चीज नहीं है। ये अग्नि के गोले दहकाने वाले होते हैं इससे शीतलता नहीं आ सकती।

महानुभाव! जीवन में समृद्धि का राज्य बाह्य पुद्गलों का ढेर नहीं है, प्रभुता और सत्ता नहीं है। समृद्धि का राज तो यह है-

**चाह गई चिंता मिटी मनवा बे परवाह।**
**जिनको कुछ नहीं चाहिये वे शाहन के शाह॥**

जो बाह्य वस्तुओं से समृद्धि चाहता है मेरी दृष्टि में वह कंगाल है। जो अंतरंग से समृद्धि को जनरेट करता है वही वास्तव में बादशाओं का बादशाह बन जाता है, सम्राटों का सम्राट बन जाता है। जिसे अंतरंग में समृद्धि मिल जाती है ऐसा व्यक्ति लोकपूज्य हो जाता है, त्रैलोक्य वंदनीय हो जाता है, अर्चनीय-दर्शनीय-प्रशंसनीय हो जाता है, उसका नाम लेने मात्र से पापों का क्षय हो जाता है। ऐसी समृद्धि हमारे जीवन में प्राप्त हो।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने कहा उस आदर्श समृद्धि को प्राप्त करने के लिये-

**एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि**
**एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं।**

आचार्य भगवन् समयसार के निर्जरा अधिकार में 220वीं गाथा में लिखते हैं- हे मानव! तूने अनादि काल से अज्ञानता में रमण किया है, तूने अनादि से पुद्गल में रमण किया है। पुद्गल के सेवन में ही तूने आनंद को मान लिया है किन्तु उस आनंद का राज, समृद्धि का राज पुद्गल नहीं है। पुद्गल तो पुनः पुनः गलता है यह तो खाज है जितना खुजाओ शांत नहीं होती वरन्

खून निकलने लगता है। ऐसे ही पुद्गल के खुजलाने से आत्म समृद्धि नहीं होती। विद्युत्वर दौलतराम जी ने कहा-

**ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण।**
**यही परमामृत जन्म जरा मृतु रोग निवारण।।**

हे आत्मन्! ज्ञान के समान संसार में और कोई सुख का कारण नहीं है यही परम अमृत है जो जन्म जरा मृत्यु को नाश करने वाला है जिसे प्राप्त करके कभी संसार की संतति नहीं होती। इसलिये उस ज्ञान में रमण करना है किसी अंगना के साथ रमण नहीं करना अपितु जिसके अंग ना अर्थात् ऐसी मुक्तिवधू के साथ रमण करना है वही हमारा स्वभाव है।

ये संसार की अंगना कभी मौके पर संग ना होगी, जब तक उसकी तृप्ति तुमसे हो रही है तब तक वह अच्छी लग रही है किंतु सत्य बात ये है कि जब तक पुण्य का उदय है तब तक वे तुम्हें सुख प्रतिभासित हो रही हैं। संसार के पदार्थ चाहे पुत्र हो या पुत्री, स्त्री हो या मित्र ये सभी मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। इनमें रमण करने से बार-बार मरण होगा, मुक्ति सुंदरी के साथ कभी वरण नहीं होगा। इसलिये आचार्य भगवन् कह रहे हैं उस ज्ञान में रमण करो बार-बार ज्ञान के सागर में डुबकियाँ लगाओ जैसे कोई गोताखोर बार-बार सागर में डुबकियाँ लगाता है। वह बार-बार डुबकी लगाने से रत्नों की मुट्ठी भर-भर कर लाता है और जो मात्र समुद्र के किनारे घूमता रहता है वह रत्नों को प्राप्त नहीं कर पाता बस समुद्र के किनारे पड़ी सीपियों को प्राप्त कर पाता है।

महानुभाव! समृद्धि के लिये आत्मा के सागर में डुबकी

लगाओ, ज्ञान के सागर से प्रीति करो। ज्ञान में प्रीति क्यों? वह इसलिये क्योंकि अभी तक जो हमने प्रीति की वह संसार वर्धक वस्तुओं से की है और प्रीति करके ये मान लिया था कि इससे हमारा कल्याण हो जायेगा। हमने अभी तक प्रेय वस्तुओं के प्रति श्रेय की धारणा बना ली थी। प्रेय अर्थात् प्रेम करने के योग्य, श्रेय अर्थात् कल्याण के योग्य। संसार में जो वस्तुयें मेरी प्रीति के योग्य थीं जिनके प्रति मैंने धारणा बना ली थी कि यही सब मेरे कल्याण में निमित्त हैं किंतु अब थोड़ा सा परिवर्तन करना है, अब तक प्रेय को श्रेय मान लिया था अब भगवान् की वाणी को मुनिवर से सुनकर वास्तव में जो श्रेयभूत है उनसे हमें प्रीति करना है अब श्रेय को प्रेय बनाना है।

अप्रेय कभी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। कभी भी अग्नि से जलधार नहीं बहती, इसलिये श्रेय को प्रेय बनाना है श्रेय ही प्रेय है सभी प्रेय श्रेय नहीं होते किंतु सभी श्रेय नियम से भव्य जीवों के लिये प्रेय होना चाहिये।

महानुभाव! आचार्यवर ने आगे कहा- **संतुट्ठोहोहि णिच्चमेदम्हि** उस ज्ञान में ही संतुष्ट हो जाओ। संसार की अन्य वस्तुयें बाहर से इकट्ठी करते हो वो हमारी आत्मा के गर्त को पूरा नहीं कर सकती। गुणभद्र स्वामी जी ने कहा- प्रत्येक प्राणी का आशा रूपी गड्ढा इतना गहरा है कि पूरे संसार की सम्पत्ति भी डाल दी जाये तो भी वह अणु के बराबर है। इतनी तृष्णा है, अनंत प्राणी हैं किसके हिस्से में कितना आयेगा, जब पूरे संसार की विभूति से वह गड्ढा न भर पाये तो वह चंद पुद्गल से कैसे भरेगा। इसीलिये कहा उसको भरने का एक ही उपाय है कि ज्ञान के दिव्य प्रकाश से अनंत गहरा गड्ढा भी पूर्ण रूपेण भर

सकता है। नित्य उस ज्ञान में ही संतुष्ट होना चाहिये और उस ज्ञान से ही तृप्ति होगी बिना ज्ञान के कभी तृप्ति होने वाली नहीं है। यदि तुम ऐसा करोगे तभी उत्तम सुख को प्राप्त कर सकोगे। उत्तम सुख को प्राप्त करना ही वास्तव में समृद्धि का लक्ष्य है।

उत्तम सुख को प्राप्त नहीं कर पाये तो समझो विपन्नता ही विपन्नता रहेगी। विपत्ति और सम्पत्ति एक साथ नहीं रह सकती। अमावस्या की रात्रि का अंधकार और सूर्य का दिव्य प्रकाश दोनों एक साथ नहीं चल सकते। महानुभाव! समृद्धि का राज यही है कि हम अपने आप में संतुष्ट होने की कोशिश करें। ज्यों-ज्यों ज्ञान की मूसलाधार वर्षा हमारे आत्म प्रदेशों में होती जायेगी त्यों-त्यों हमें अंदर से आनंद आयेगा, त्यों-त्यों अंदर से संतुष्टि होगी, त्यों-त्यों हमें अंतरंग से उसमें रमण करने का मन करेगा उसे छोड़कर फिर कहीं बाहर जाने की इच्छा नहीं होगी।

आप सभी महानुभावों को संक्षेप में समृद्धि के बारे में बताया आप समृद्ध होवें, धर्मध्यान की वृद्धि होवे, मंगल होवे इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# सार्थकता की तलाश

धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!

'सार्थकता की तलाश' पहले शब्दों के पीछे छिपे भाव को समझने की चेष्टा करें। पहला शब्द है 'सार्थकता' यह शब्द मूल में है 'सार'। संसार में जितने भी कार्य किये जाते हैं या तो वे सारभूत होते हैं या निःसार होते हैं। जो वृक्ष फल देने में समर्थ होता है उसे फलीभूत कहते हैं सफलीभूत कहते हैं। जो वृक्ष फल देने में समर्थ नहीं होता उसे निष्फल कहते हैं। संसार में जितनी भी क्रियायें की जाती हैं चाहे मन के माध्यम से विचारों का निरन्तर चिंतन चलता है, चाहे वचनों के द्वारा हम शब्दों के माध्यम से अपने भावों को प्रकट करते हैं और चाहे शरीर के द्वारा मन में निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये चेष्टा करते हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति सोचता यही है कि मैं चाहे अल्पकालीन क्रिया करूँ, चाहे दीर्घकालीन मुझे उस क्रिया का फल जरूर मिलना चाहिये, और ये बात भी निश्चित है प्रत्येक क्रिया का फल मिलता जरूर है चाहे फल के रूप में उसे सुमधुर फल मिलें अथवा काँटों का समूह, चाहे उसे कोंपल मिलें या पत्ते, उसे वृक्ष की छाल मिले या शाखायें कोई भी क्रिया ऐसी नहीं है जिस क्रिया को हम नपुंसक या बांझ कह सकें।

जितनी भी संसार में क्रियायें हैं प्रत्येक क्रिया का फल होता है। विज्ञान कहता है संसार में ऐसा कोई भी कार्य नहीं होता जो बिना बल लगाये हो जाये, प्रत्येक क्रिया के साथ बल लगाना पड़ता है चाहे मनोबल, चाहे वचनबल, चाहे धनबल कोई भी बल लगाना पड़े किन्तु बिना बल लगाये क्रिया नहीं होती है।

क्रिया का अर्थ होता है एक द्रव्य का दूसरी पर्याय में बदल जाना या एक द्रव्य का दूसरे स्थान पर पहुँच जाना अथवा उस द्रव्य में गति हो जाना। यदि बीज है तो वृक्ष तक पहुँच जाना, महानुभाव! क्रियायें फल तो देती हैं किन्तु सभी फल मिष्ट नहीं होते। ऐसा कोई वृक्ष नहीं जिसके सभी फल एक जैसे हों। कोई फल बड़ा होता है, कोई फल कम मीठा होता है। ये बात तो कही जा सकती है कि एक वृक्ष के सभी फल एक ही जाति के होते हैं किंतु एक ही स्वाद के हों यह नहीं कह सकते। उस वृक्ष पर लगे फलों में भिन्नता देखी जाती है।

महानुभाव! एक उत्तम फल के लिये बहुत सारे मध्यम व जघन्य फलों को भी स्वीकार करना पड़ता है। स्वर्ग का सुख अच्छा है किन्तु जिन्हें मोक्ष सुख चाहिये उसे स्वर्ग को छोड़ना पड़ेगा। स्वर्ग की लालसा करने वाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। स्वर्ग आकर सम्मान पूर्वक किसी जीव को स्वर्ग में ले जाना चाहता हो, स्वर्ग का वैभव बुला रहा हो तब उस सबकी जो उपेक्षा कर सकता है वह मोक्ष तक पहुँच सकता है। जो स्वर्ग के सुख में रंजायमान हो जायेगा तो मोक्ष सुख को प्राप्त न कर पायेगा।

एक बालक बाल्यअवस्था में गिल्ली-डंडा खेलता हुआ अपनी नाक को गँवा बैठा। बालक बड़ा हुआ यद्यपि वह बहुत प्रतिष्ठित परिवार से था उच्च कुलीन था किन्तु उसकी नासिका नहीं थी। आप जानते हैं जिसकी नाक नहीं होती उसे 'नकटा' कहते हैं। इस शब्द से उसे बड़ी चिड़ होती थी, उसने घर-गृहस्थी से संन्यास ले लिया, वह महात्मा बनके साधना करने लगा। साधना का क्रम बढ़ा और भक्तों की भीड़ आने लगी। एक दिन एक भक्त ने पूछा महात्मा जी! क्षमा करना बुरा नहीं मानना, मैं

निवेदन पूर्वक आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, ये बतायें आपकी नासिका कैसे कट गयी? महात्मा जी को बुरा तो लगा, क्योंकि व्यक्ति सीधे-सीधे पूछता है तो बुरा लग जाता है।

**काने से काना कहो, काना जाये रूठ।**
**धीरे-धीरे पूछ ले, कैसे गयी है फूट।।**

संत महात्मा ने कहा- भैया! सत्य बताऊँ तो मेरी नाक कटी नहीं थी काट ली थी। क्यों? बोले- ये बहुत रहस्य की बात है, ये तेरी समझ में नहीं आयेगी। भक्त बोला- आप समझाने की चेष्टा करो मैं समझने की चेष्टा करूँगा हो सकता है समझ में आ जाये। तो सत्य बात तो ये है कि मोक्ष और मध्य लोक के बीच में नाक (स्वर्ग) आती है। यदि स्वर्ग नहीं हो तो व्यक्ति यहीं से सीधे सिद्धालय को देख ले, उन सिद्धों को नमस्कार कर ले। नाक बीच में आती है इसलिये परमात्मा के दर्शन नहीं होते। व्यक्ति की नाक ही तो खतरनाक है कोई उसे झुकाना नहीं चाहता। नाक के लिये वह अपना जीवन दाव पर लगा देता है। यह अहंकार खतरनाक है। जो अपनी नाक को अलग कर देता है उसे परमात्मा के दर्शन होते हैं। प्रभु की दृष्टि नासाग्र होती है उन्होंने ध्यान के माध्यम से नाक को दबा लिया अब वे नाक के लिये काम नहीं करते। उनकी दृष्टि नासा पर है अर्थात् उनके मन में अब कोई आशा नहीं। भक्त ने कहा महात्मा जी ये तो बहुत अच्छी बात है। दुनिया परमात्मा के दर्शन तो करना चाहती है किंतु नाक को बचाना चाहती है। वह स्वर्ग को छोड़ना नहीं चाहती और मोक्ष को प्राप्त करना चाहती है बाताओ यह कैसे होगा? महात्मा जी मैं स्वर्ग का लोभ नहीं करता, मैं नाक का लोभ छोड़ दूँगा मुझे तो आप परमात्मा के दर्शन कराओ। महात्मा

जी ने कहा ठीक है तेरी नाक कटवा देते हैं, और उसकी नाक कटवा दी। 8-15 दिन में वह घाव ठीक हो गया, अब वह कहने लगा महात्मा जी! मुझे परमात्मा के दर्शन कराओ।

महात्मा जी ने कहा- देख! मेरी नाक तो गिल्ली डंडा खेलते में कट गयी थी, पर मैं यह बात कैसे कहता, अब अच्छा है हम एक से दो तो हो गये।

**तू न कह मेरी, मैं न कहूँ तेरी।**
**चलने दे ढेरी की ढेरी।।**

सबकी नाक काटो, सबसे कहो परमात्मा के दर्शन होते हैं।

संसार में इस प्रकार के व्यक्ति भी होते हैं जिन्हें संसार में कुछ नहीं मिला वे दूसरे व्यक्तियों को भी निःसार अवस्था में डालना चाहते हैं। जिसे धन कमाने में सफलता नहीं मिली वह कहता है धन कमाने में क्या रखा है, इससे जीवन निःसार है, जिसने गृहस्थी बसायी और दुख प्राप्त किया तब भी दूसरों से कहेगा- अरे! गृहस्थी बसा गृहस्थ जीवन का आनंद ही कुछ और है, जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त की और सुख रंचमात्र भी नहीं मिला फिर भी कहेगा अरे! जिसकी समाज में प्रतिष्ठा नहीं उसके पास कुछ नहीं। तो जो व्यक्ति जिस काम में आगे बढ़ जाता है पुनः लौटना नहीं चाहता, दुनिया को वही प्रेरणा देना चाहता है चाहे वह वस्तु सारभूत हो या निःसार।

महानुभाव! जो भी क्रियायें की जाती हैं उनका फल अवश्य प्राप्त होता है। कुछ क्रियायें ऐसी होती हैं जिनके फल मधुर नहीं होते। किसी व्यक्ति ने बबूल का पेड़ लगाया, किसी ने अंगूर की बेल लगायी। बबूल के पेड़ में बबूल की फली लगे या न लगे

किन्तु काँटें तो लगेंगे ही, अंगूर की बेल पर अंगूर लगे या न लगें अंगूर के पत्ते-बेल वैसी ही रहेगी। लगेंगे तो अंगूर ही लगेंगे अन्य फल नहीं। जैसा पेड़ है वैसा ही फल लगेगा।

एक श्रेष्ठ फल को प्राप्त करने के लिये कितना सारा श्रम किया जाता है। हीरा कहाँ मिलता है? हीरे की खदान में, जौहरी के पास तो बाद में पहुँचता है। हीरे की खदान मुख्यतः भारत में मध्यप्रदेश में है पन्ना जिले में। किन्तु हीरे ऐसे नहीं मिल जाते जैसे कहीं मिट्टी का ढेर लगा हो, और झोली भर कर ले आओ। उस हीरे को प्राप्त करने के लिये खदान खोदी जाती है, मिट्टी निकलती है, कंकड़-पत्थर निकलते हैं, कोयला निकलता है निकलते-निकलते फिर कोई कच्चा हीरा या पक्का हीरा या दागी हीरा या निर्दोष हीरा निकलता चला जाता है।

एक बार आचार्य शांतिसागर जी महाराज शिखर जी की यात्रा करने जा रहे थे, जब वे कटनी पहुँचे, वहाँ कुछ ऐसे विद्वान् जिन्हें शब्द का अजीर्ण हो गया था, वे आये। भोजन के अजीर्ण से ज्यादा खतरनाक होता है शब्द का अजीर्ण। जो शब्द ज्ञानी विद्वान् हो वह चैन से घर में बैठ नहीं सकता, वह स्वयं एक भी क्रिया नहीं करेगा और दूसरों की प्रत्येक क्रिया की समीक्षा करता है। आ. शांतिसागर जी के पास ऐसे ही विद्वान् आये, उन्होंने नमस्कार नहीं किया, हाथ बाँधकर खड़े हो गये और बोले- महाराज जी ये पंचमकाल है, इस पंचमकाल में भावलिंगी मुनि नहीं होते, आप कहाँ से मुनि बन गये। महाराज जी ने कहा आप ऐसा क्यों कहते हो कि पंचमकाल में मुनि नहीं होते। इंद्रभूति गौतम गणधर, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी आदि मोक्ष गये क्या वे भावलिंगी नहीं थे। क्या जो श्रुतकेवली, द्वादश

अंग-चौदह पूर्व के पाठी मुनि हुये वे भावलिंगी नहीं थे, उसके आगे जो परम्परा चलती आयी धरसेनादि, आचार्य पुष्पदंत, भूतबलि, कुंदकुंदादि इतने आचार्य हुये क्या वे भावलिंगी नहीं थे, जब थे तो क्या वर्तमान के साधु भावलिंगी नहीं हो सकते। समय प्रतिकूल जरूर है किंतु भावलिंगी साधु नहीं है, ऐसा नहीं है। नदी में पानी कम तो जरूर हो गया है किंतु धारा अभी भी पूरब की ओर बह रही है। चाहे धारा मोटी हो या पतली हो किंतु उसका बहाव पूरब की ओर ही है। तो पंचमकाल में साधु होते हैं।

वे बोले- महाराज! हम ऐसा नहीं मानते। आचार्यश्री बोले एक बात बताओ- मैंने सुना है तुम्हारे यहाँ हीरे की खदान हैं, फिर तो गाड़ी बोरी में भरकर हीरे आते होंगे? वे विद्वान् बोले- नहीं महाराज आप नहीं जानते, हीरा ऐसे नहीं निकलता पहले मिट्टी खोदनी पड़ती है कई सैकड़ों ट्रक, फिर कंकड-पत्थर निकलते हैं तब जाकर कहीं दो-चार हीरा निकलकर आते हैं, वह हीरा लाखों करोड़ों का भी हो सकता है और कम का भी। महाराज जी ने कहा- अरे! जब हीरे की खदान है तो वहाँ से मिट्टी क्यों खोदते हो, क्यों पत्थर खोदते हो, क्यों वहाँ से कोयला निकालते हो जब हीरे की खदान है तो सीधे-सीधे बोरी में हीरा क्यों नहीं भर लेते। विद्वान् बोले- ऐसे नहीं होता, यह सब मिट्टी-पत्थरादि निकालना जरूरी है। अरे! जब इसमें से मिट्टी निकलती है, पत्थर-कोयला निकलते हैं तो इसे हीरे की खदान क्यों कह रहे हो? मिट्टी की खदान कहो। महाराज जी! हीरा भी तो उसी खदान में से निकलता है। अरे! जब हीरा निकलता है तो पूरा हीरा-हीरा ही निकलना चाहिये। नहीं महाराज, ऐसा नहीं होगा। तो भईया! ये जिनशासन की खदान हीरे की खदान

है इसमें तीर्थंकर जैसे हीरा निकलते हैं किन्तु हम जैसे कंकड-पत्थर न निकलेंगे तो तीर्थंकर जैसा हीरा कहाँ से आयेगा।

सारभूत एक तीर्थंकर जैसे हीरे को प्राप्त करने के लिये इस खदान में से हम जैसे मुनि, उपाध्याय, आचार्य निकलेंगे। चौथे काल में भी निकलते थे, चौथेकाल में क्या जिनशासन में दीक्षा लेने वाला प्रत्येक तीर्थंकर ही होता था? क्या केवली ही होता था? या सभी ऋद्धियाँ होती हीं थीं, क्या सभी द्वादशांग के पाठी ही होते थे? तीर्थंकर का सान्निध्य पाकर क्या सभी क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होते थे? क्या उपशम/क्षयोपशम सम्यक्त्वधारी नहीं होते थे? क्या सभी महाव्रती ही होते थे? नहीं किन्तु ये खदान ऐसी है इस जिनशासन के वृक्ष का उत्कृष्ट फल है तीर्थंकर बनकर के मोक्षफल को प्राप्त करना। किंतु ये जिनशासन का वृक्ष जिस पर सभी फल उत्कृष्ट-उत्कृष्ट ही आयें ऐसा नहीं है, अरे! कुछ मध्यम फल भी तो आते हैं, सामान्य केवली भी तो मोक्ष जाते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें न अवधिज्ञान हो न मनःपर्ययज्ञान फिर भी श्रुतज्ञान से केवलज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त कर लिया, कुछ ऐसे भी होंगे जो देशावधि ज्ञान के धारी होंगे या परमावधि ज्ञान के धारी होंगे सब प्रकार के हो सकते हैं।

महानुभाव! हम सारभूत अवस्था को प्राप्त करना चाहते हैं। आप प्रज्ञ पुरुष हैं, बहुविद् या विद्वान् हैं, श्रीमान् हैं, सयाने हैं, चतुर हैं, अनुभवी हैं इसलिये कोई भी काम व्यर्थ में करना नहीं चाहते और वर्तमान काल में तो विशेष रूप से। क्षत्रिय वह कार्य कर सकता है जो मन में आ गया, उसका फल मिले अथवा न मिले। ब्राह्मण फल को सामने देखकर कार्य करता है। यदि कार्य

के फल में बट्टा लग रहा है तो छोड़ देगा। वणिक् पहले सामने पूछ लेता है इसका फल क्या होगा तब कार्य को प्रारंभ करता है।

हमारे पास कई लोग आते हैं पूछते हैं महाराज श्री हम पुण्य की क्रिया करना चाहते हैं, आप प्रेरणा भी खूब देते हो किंतु आप ये बताओ सबसे ज्यादा पुण्य किससे मिलता है। हम अपने धन को उसी पुण्य कार्य में लगायें। वेदी-शिखर में, मंदिर में, जिनबिम्ब में, मुनियों के आहार में, तीर्थयात्रा में, परोपकार में किसमें सबसे ज्यादा पुण्य लगता है हम वही पुण्य का कार्य करेंगे। हमने उससे कहा भैया- सबसे अधिक पुण्य लगता है अपनी विशुद्धि से। हमारी भावनायें विशुद्ध हों। तुम कोई भी पुण्य क्रिया करो भावना यदि खराब है तो बड़े से बड़े पुण्य का कार्य भी निष्फल होगा।

महानुभाव! आप सारभूत अवस्था चाहते हैं। कहीं हम ठगे न जायें इसलिये बाजार में दो रु. की वस्तु भी खरीदते हैं तो परख लेते हैं, यदि मटका लिया तो बजा कर देख लेते हों कि यह 100% सही है कि 99%, यदि 100% सही वाली वस्तु मिल रही हो तो 99% वाली को छोड़ देते हैं। आप उत्कृष्ट वस्तु को खरीदने की भावना रखते हैं जब मूल्य पूरा दिया जा रहा है तो निकृष्ट वस्तु स्वीकार क्यों करी जाये।

महानुभाव! आप चाहे कोई भी वस्तु खरीदें जाहिर सी बात है जिस वस्तु में उतने ही मूल्य में अधिक सार होगा, अधिक गुणवत्ता होगी आप वही खरीदेंगे। आप किसी फल की दुकान पर गये आपने मौसमी (माना कि) खरीदी, वह 100रु. किलो मौसमी में जूस माना कि एक लोटा ही निकला, और दूसरी

दुकान पर उतने ही दाम में वह मौसमी जो देखने में अच्छी रसदार लग रही है, खरीदी तो उसमें 1 जग जूस निकला। तो बुद्धिमान तो वही कहलाया जिसने अधिक सार वाले फल को खरीदा। महानुभाव! वस्तु चाहे आपके वस्त्र हों, आभूषण हों, वाहन हो, मकान हो कुछ भी हो जिसमें आपको सारभूत अवस्था दिखाई दे वही लेना पसंद करते हैं।

आप सब कुछ सारभूत-सारभूत ही लेते हैं किन्तु इस जीवन को नि:सार क्यों कर देते हो। आप ये क्यों नहीं सोचते कि मेरे जीवन का सार क्या है? उस जीवन के सार को जब तक नहीं समझोगे तब तक उस सार को खोजने का प्रयास ही नहीं किया जा सकता। सार को ग्रहण करने पर फिर कभी दु:ख नहीं होता और जिसका मूल्य ग्रहण नहीं कर पाया तो दु:ख होता है। आपने यदि दस हजार रु. के वस्त्र खरीदे, आपने उन्हें पहन लिया और बाद में वे जीर्णशीर्ण हो गये फिर वह वस्त्र खो जाये या फट जाये तो आपको दु:ख नहीं होगा और जब तुरंत खरीद कर लाये और चोरी चले गये या जल गये तो दु:ख होता है क्योंकि जब कपड़े पहन लिये तब वे पुराने हो गये आप कहते हैं पैसे वसूल हो गये, जल गये तो जल जाने दो। किंतु जब नये खरीदकर लाये थे तब वे खो जायें या जल जायें तो दु:ख ज्यादा होता है, हम उनका सार/मूल्य निकाल नहीं पाये। मकान बनवाया कई लाख खर्च करके कोठी बनवायी उसमें छ: माह भी न रह पाये, भूकंप आया धराशाही हो गया, अब वह व्यक्ति फूट-फूट कर रो रहा है। पिता मर गये, क्यों? इसलिये नहीं कि भूकंप आया, वह इसलिये कि मकान के साथ उनका हार्ट अटैक हो गया जिसके कारण वे मर गये? सभी दु:खी हो रहे हैं

कि उस मकान को बनवाया था जिसमें तीन पीढ़ी तक निराकुलता से रहते हम तो उसमें तीन साल भी नहीं रह पाये, छः महीने भी पूरे नहीं हुये कि मकान धराशाही हो गया।

दुःख हुआ क्यों? क्योंकि उस मकान का सार नहीं निकाल पाये। हम सदा ही सारभूत अवस्था को देखते हैं। इस जीवन का भी कुछ सार है उसे भी हासिल करना चाहिये।

किसी नगर में दो गरीब मित्रों ने अपना व्यापार प्रारंभ किया, पैसे का अभाव था इसलिये व्यापार में सफलता नहीं मिल रही थी वृद्ध पुरुष कहते हैं-

**'पूंजी राखे वणिक् काया राखे धर्म'**

शरीर अनुकूल है तो धर्म की साधना हो सकती है, पूंजी अनुकूल है तो व्यापार किया जा सकता है। पूंजी नहीं तो व्यापार कैसे करोगे? और शरीर में दमखम नहीं तो तपस्या कैसे करोगे? यदि कोई तीव्र पुण्य का उदय हो तो अलग बात है फिर तो वृद्ध पुरुष ये भी कहते हैं-

**भाग्य फले तो सब फले, भीख वणिक् व्यापार**

भाग्य यदि ठीक हो तो व्यक्ति भीख माँगकर भी राजा बन सकता है भिखारी भी राजा बन सकता है यदि और बिना पूंजी के व्यापार करे तो केवल बातों-बातों में भी पहले वायदे व्यापार होते थे, उससे व्यक्ति अरबपति करोड़पति बन सकता है। भाग्य यदि अनुकूल हो तो। अन्यथा सामान्यतः बिना पूंजी के व्यापार नहीं, बिना शरीर के तपस्या नहीं। उन दोनों ने सुना अमुक नगर में कोई एक व्यक्ति पुण्य को खरीदता है और पैसे उधार देता है और वह कह देता है कि कोई जमानत नहीं चाहे पैसे इस भव

में दे देना या अगले भव में दे देना। उन व्यक्तियों ने सोचा अगले भव की किसने देखा पैसे ले आते हैं। वे पैसे लेने के लिये गये, पुण्य लिखकर दिया तो उन्हें दस हजार रु. मिल गये। पूछा- पैसे चुकाओगे न? बोले- हाँ अवश्य चुकाएंगे। वे दोनों पैसे लेकर बड़ी खुशी-खुशी आ रहे थे यह सोचते हुये कि इस भव में तो चुकाना है नहीं, अगले भव में वह माँगने नहीं आयेगा जिंदगी भर चैन से जीओ चार्वाक के मत को अपनाओ-

**यावज्जीवन सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**
**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥**

अरे! जब तक जीओ चैन से जीओ, मौज करो और तो और पानी नहीं घी पियो, घर में पैसा न हो तो कर्ज माँगकर लाओ और चैन से जीयो क्योंकि मरने के उपरांत कौन यह आत्मा यहाँ रहती है, वह तो नष्ट हो जाती है ऋण चुकाने जैसी कोई बात नहीं।

ऐसी ही चर्चा करते हुये वे दोनों भी चले आ रहे थे। संध्या काल हो गया वे एक सराय में ठहरे, रात्रि में अचानक दो बैलों की आवाज सुनाई दी। एक बैल दूसरे बैल से अपनी भाषा में चर्चा कर रहा था। (पहले लोग पशुओं की बोली समझते थे) उन दोनों ने उनकी बातें सुनी-एक बैल कह रहा था, मित्र कल शाम तक मेरी मृत्यु हो जायेगी, ऐसा मुझे आभास हो रहा है। इस सेठ के यहाँ मैं बैल बनकर कर्ज चुका रहा हूँ, अभी तक इसका कर्ज पूरा नहीं चुका पाया इससे पहले भव में भी चुकाया। अब मैं चाहता हूँ हे भगवान्! आगे की पर्याय में मैं गधा, बैल, वृक्ष आदि न बनूँ इसका कर्ज अब यहीं का यहीं चुक जाये तो ठीक रहे।

दूसरे बैल ने कहा- बता भाई मैं तेरी क्या सहायता कर

सकता हूँ। सहायता ये कर सकते हो कि ये सेठ राजा से शर्त लगा ले कि मैं राजा के बैल को हरा दूँगा और 500रु. की शर्त रखें क्योंकि मेरा 500 रु. का कर्ज बाकी रह गया है चुकाने के लिये, 500 रु. चुक जायेंगे तो मुझे आगे किसी निंद्य योनि में न जाना पड़ेगा। बैल आपस में बात कर रहे थे, और वे दोनों व्यक्ति बड़े आश्चर्य से उनकी बात सुन रहे थे। वे दोनों व्यक्ति आये और बैलों से उन्हीं की भाषा में कहा कि ठीक है कल ऐसा ही होगा। और प्रात:काल सराय के मालिक यानि उस सेठ के पास गये और कहने लगे- सेठ जी आप अपने बैल की कुश्ती राजा के बैल से कराओ। सेठ जी बोले- कैसी पागलों जैसी बात करते हो, राजा का बैल इतना हृष्ट पुष्ट है कि मेरे बैल को एक बार में पछाड़ देगा मेरा बैल मर जायेगा। वे बोले सेठ जी! आपका बैल तो वैसे भी शाम तक मरना है। सेठ जी बोले तुम क्या कोई भविष्यवक्ता हो जो ऐसी बात कह रहे हो? सेठ जी पक्की बात मान लो बैल शाम तक मर जायेगा। आप बैलों की कुश्ती करा दो और 500 रु. की शर्त रख लो, ये उसे हरा देगा अन्यथा ये तो वैसे भी मरना है। सेठ राजी हो गया।

सेठ के बैल ने राजा के बैल को इतनी कसकर ठोकर मारी कि वह संभल भी नहीं पाया और धड़ाम से गिर गया, सेठ का बैल जीत गया और सेठ को 500 रु. मिल गये। सेठ को बहुत खुशी थी पर राजा को गम कि मेरा बैल हार गया। दो-तीन घंटे बाद खबर मिली कि सेठ का बैल मृत्यु को प्राप्त हो चुका है। सराय में ठहरे व्यक्तियों को भी बैल की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ दोनों सोचने लगे कि बैल की बात तो सत्य निकली।

संयोग की बात उस रात्रि को उन्हें हाथी के चिंघाड़ने की

आवाज सुनाई दी। वह अपनी हथिनी से कह रहा था- प्रिये! आज हमारी अंतिम रात्रि है आज रात्रि को हम प्रेम से वार्ता कर लेते हैं कल तो हम चले जायेंगे। हथिनी रोती हुयी बोली ऐसा मत कहो- मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पाऊँगी। हाथी बोला- दु:खी मत हो यह न तुम्हारे हाथ की बात है न मेरे। मैंने और तुमने मिलकर इस सेठ का कर्जा चुकाया किंतु अब तू कब तक चुकायेगी, कर्जा तो मैंने लिया था पूर्वभव में तुम तो मेरी पत्नी थी, निदान के कारण तू यहाँ पैदा हो गयी है मेरे साथ तू भी कर्जा चुका रही है। इसका कर्जा अभी चुका नहीं, एक लाख रुपया अभी भी बाकी रह गया है ये कैसे चुकेंगे। इसका एक उपाय है, यदि ये सेठ मुझे एक लाख में किसी को बेच दे तो सेठ का कर्ज उतर जायेगा, मुझे तो वैसे भी मरना है।

उन दोनों व्यक्तियों ने यह बात सुनी और सोचा बैल की बात तो सत्य हो गयी, वह तो ऐसे जैसे अंधे के हाथ बटेर लग गयी हो, किंतु हाथी के साथ ऐसा थोड़े ही होगा। वह दोनों फिर भी प्रात:काल सेठ के पास गये बोले- आपसे एक निवेदन है आप अपने हाथी को एक लाख रु. में बेच दो, सेठ बोला सवालाख का हाथी मैं एक लाख में कैसे बेच दूँ। किन्तु सेठ ने सोचा इन दोनों की पहले बैल वाली बात भी ठीक थी। सेठ तुरंत राजा के पास गया और बोला- राजन् मुझे कुछ पैसों की आवश्यकता है आप मेरा हाथी खरीद लो, वैसे तो वह सवा-डेढ़ लाख का हाथी है पर आपको मैं एक लाख में बेच दूँगा। राजा ने कहा ठीक है। और सेठ वहाँ हाथी को बाँधकर एक लाख रु. लेकर चला गया। शाम हुयी राजा का सेवक सेठ के घर पहुँचा बोला- आपका हाथी न कुछ खाता है न पीता है वह बेहोश पड़ा है,

सेठ पहुँचा तो उसके पहुँचने से पहले ही हाथी मृत्यु को प्राप्त हो गया।

अब उन दोनों व्यक्तियों को ये दो उदाहरण देखकर मन में लगा, पैसा ले तो आये, ये सोचकर की चुकाना नहीं पड़ेगा किन्तु यदि हमने इस भव में चुकाने का भाव नहीं रखा तो हमको भी गधा, बैल, हाथी, ऊँट बनना पड़ेगा और ज्यादा पाप का उदय रहा तो सेठ के खेत पर आम का पेड़ बनकर चुकाना पड़ेगा, बीसों साल फल देने पड़ेंगे, सर्दी-गर्मी-बरसात सहनी पड़ेगी। इसलिये अभी पैसे लौटाने चलो, हम भले ही छोटी-मोटी नौकरी से गुजारा कर लेंगे। उस सेठ ने बिना कुछ गिरवी रखे, बिना कुछ लिखे, बिना अंगूठे के हमें धन दिया है तो उसे विश्वास है कि मेरा एक पैसा भी विश्व का कोई व्यक्ति खा नहीं सकता, मैं किसी का एक कण ले नहीं सकता। वह इसीलिये इतना धर्मात्मा है जो सभी को धन बाँटता है। उन दोनों ने जाकर उसका धन लौटा दिया। उसने पूछा भई ऐसा क्यों? वे बोले बस! हमें जो चाहिये था वह मिल गया अब हमें इस पैसे की दरकार नहीं है, अब हम मेहनत करेंगे और पैसा कमायेंगे।

महानुभाव! जीवन सार्थक तब होता है जब हम जीवन के बारे में सोचें कि जीवन का मूल्य क्या है। सेठ ने बैल को बेच दिया, हाथी को बेच दिया और भी पशुधन बेच सकता है किन्तु जब पशुओं ने ये चर्चा की कि आज तो सेठ की मृत्यु होने वाली है। सेठ अब रोता है, चिल्लाता है कि अब क्या करूँ क्योंकि अभी तक मैंने अपना पैसा वसूल कर लिया, पशुओं को तो बेच दिया किंतु अब मैं स्वयं को कैसे बेचूँ, किसे बेचूँ? वह मुनि महाराज के पास पहुँचा- बोला महाराज श्री मैंने हाथी-बैल घोड़े

आदि सभी का मूल्य वसूल कर लिया। मेरे सराय में जो व्यक्ति रहते हैं वे पशुओं की भाषा जानते हैं मैंने उन्हें अपने यहाँ रख लिया है कि मेरे पशु क्या चर्चा करते हैं। अब उन पशुओं ने कहा है कि कल शाम तक मेरी मृत्यु हो जायेगी, मैं अपना मूल्य कैसे वसूल करूँ, क्या करूँ?

मुनिराज ने कहा- इस शरीर का मूल्य यही है कि-

**"राचन जोग स्वरूप न जाको, विरचन योग सही है।**
**यह तन पाय महातप कीजे, यामें सार यही है॥"**

इस शरीर में रंजायमान होना इसका सार नहीं है इस मनुष्य भव को प्राप्त करके तो तपस्या करो, रत्नत्रय को धारण करो, उसे प्राप्त कर लिया तो तुमने जीवन का मूल्य वसूल कर लिया।

महानुभाव! उस सेठ की समझ में तो वह बात आ गयी, अब तुम सेठों की समझ में बात कब आयेगी? उस सेठ ने तो उत्तम समाधि को प्राप्त कर अपने जीवन का सार निकाल लिया। रस्सी का अंतिम छोर पकड़ कर भव कूप से बाहर निकल आया। जिंदगी भर की पूरी रस्सी मानो चली गयी कुऐं में, अंतिम छोर भी पकड़ में आ जाये तब भी उस कुएँ में से बाल्टी निकाली जा सकती है। किंतु जो अंतिम छोर को भी न पकड़ पाये, वह तो केवल हाथ मलता रह जायेगा।

आप लोग भी अपने जीवन को सफल और सार्थक कर सकते हैं। जीवन का सार है धर्म धारण करना। वह धर्म निश्चय और व्यवहार से दो प्रकार का है। व्यवहार धर्म के भी दो रूप हैं एक मुनिमहाराज का व्यवहार धर्म और एक श्रावकों का व्यवहार धर्म। आप श्रावक हैं श्रावकों का व्यवहार धर्म पालना सीखो।

जिनपूजा भक्ति अर्चा से लेकर आहार, स्वाध्याय, संयम, तप, व्रत, जप, तीर्थयात्रा, वैय्यावृत्ति आदि सभी व्यवहार धर्म में आते हैं इन सभी धर्मों के माध्यम से ही निश्चय धर्म की प्राप्ति हो सकती है, उसे सीखना है उसे प्राप्त करना है।

महानुभाव! सार को सीखने से ही सार्थकता है। यदि फल को प्राप्त किया तो जीवन सफल हो गया। जीवन की सार्थकता है वह धर्म, परिणामों की विशुद्धि, अहंकार के बंधन को तोड़ना। मायाचारी से पल्ला झाड़ दिया, लोभ की अग्नि छू भी न पायी आँख बंद करके बैठ गये संतोष के साथ कि जो मेरे भाग्य में है उसे कोई छीन नहीं सकता। यदि मेरे पाप का उदय है तो कोई मेरे पाप को भी नहीं छीन सकता। मैं ही पुण्य की आरी से पाप के उस वृक्ष को उखाड़ सकता हूँ। बिना पुण्य के पाप की बेड़ी तोड़ी नहीं जा सकती। पुण्य कार्य करना पड़ता है। पूर्वभव का मोटा पाप, शक्तिशाली पुण्य से ही कट पाता है। आप थोड़ा सा पुण्य करके कहते हो हम इतनी पूजा पाठ करते हैं, रात्रि में नहीं खाते, अभिषेक करते हैं किन्तु इतने मात्र से काम चलता नहीं है। सूखे घड़े में 1 बूँद तो पता भी नहीं चलती, 10-15 बूंद तो वह सूखा घड़ा वैसे ही सोख लेता है किन्तु हाँ पुण्य में यदि निरंतर लगे रहोगे तो यह बात 100% है कि तुम्हारा पुण्य उस पाप को काटकर ही रहेगा। जब रस्सी पत्थर को काट देती है तो तुम्हारी पुण्य की क्रिया पाप को क्यों नहीं काट पायेगी।

महानुभाव! आपने वह प्रसंग सुना होगा दो भाई एक ही माँ से जन्म लिया दोनों की शक्ल एक जैसी अक्ल अलग-अलग। दोनों की प्रकृति अलग-अलग नियति अलग-अलग स्वभाव और कर्म अलग-अलग। एक बेटा बड़ा होकर सप्त व्यसनी हो गया,

दूसरा बेटा साधुओं की संगति करता, पूजा-पाठ करता, परोपकार में रत रहता। जो भाई व्यसनी था वह अपने धर्मात्मा भाई से बोला, पागल! क्यों यहाँ मंदिर में पड़ा है, मेरे साथ चल, मौजमस्ती करेंगे, यह जीवन इसीलिये मिला है, दूसरा भाई कहता है नहीं मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकता अपितु भाई तू भी पापों को छोड़ दे, पुण्य कर्म में रत हो जा। किन्तु व्यसनी भाई को यह उपदेश नहीं सुहाता, वह कहता-मैं तो वही करूँगा जो मुझे करना है।

दोनों भाई एक-दूसरे को समझाते रहते पर एक दूसरे की बात नहीं मानते। एक दिन संयोगवशात् जब व्यसनी भाई वेश्या के घर जा रहा था, उसे रास्ते में सोने के सिक्कों की थैली मिली, और जो पूजा पाठ करता था, वह मंदिर जा रहा था, संयोग से उसके पैर में काँटा लग गया। लौटकर दोनों घर आये, धर्मात्मा भाई काँटें के दर्द से कराह रहा था, दूसरे भाई ने पूछा क्या हुआ- बोला काँटा लग गया, वह कहने लगा और जा मंदिर, मंदिर जायेगा तो काँटें ही लगेंगे। मंदिर जाने वालों पर तो कष्ट ही आते हैं, इसलिये तो मैं नहीं जाता और लम्बा चौड़ा उपदेश सुना दिया। वह प्रभु भक्त भाई बोला- भैया! ऐसा नहीं है मुझे विश्वास है धर्म करने से, पुण्य करने से पाप का फल नहीं मिलेगा।

व्यसनी भाई बोला- यदि ऐसा ही है तो तुम्हें काँटा क्यों लगा, और मुझसे जो तुम मौज-मस्ती की मना करते हो तो देखो आज मुझे ये सोने के सिक्के मिले जो तुम पूरे जीवन में भी न कमा पाओगे। भईया! मुझे मेरे धर्म पर श्रद्धान है, किंतु तुम्हें मेरी बात समझ में नहीं आ रही तो चलो किसी मुनिमहाराज के पास चलते हैं। प्रातःकाल दोनों मुनिराज के पास पहुँचे, उनसे पूछा-मैं

प्रतिदिन पूजा पाठ करने वाला, स्वाध्याय, संयम, दानादि का पालन करने वाला, कल मेरे पैर में काँटा चुभ गया, और ये मेरा सप्त-व्यसनी भाई इसे सोने के सिक्कों की थैली मिली, ऐसा कैसे हो गया? मुनिराज अवधिज्ञानी थे, उन्होंने अपने ज्ञान से जाना तू पूर्वभव में उस सेठ के यहाँ पुत्र था, उस समय तू जितने कुकर्म कर सकता था, उतने किये और तुझे फाँसी की सजा होनी थी, किंतु तू भाग गया, सैनिक पकड़ नहीं पाये, तू नदी में कूद गया और तैर न पाया वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गया। नरकादि में भ्रमण करते-करते क्रमशः आज यहाँ जन्मा है। यदि तूने आज इतने पुण्य कार्य नहीं किये होते तो तुझे उन पापों की सजा फाँसी होनी थी जो कि तूने पुण्य कर-कर के उस सूली की सजा को काट करके एक शूल (कांटे) में बदल ली।

ये तेरा भाई जो पूर्व भव में भी तेरा भाई था किंतु इसने पूर्व भव में पुण्य कार्य किये थे, उपवास, व्रत करता, साधुसेवा करता, परोपकार कर पुण्य अर्जन करता था। पिता के धन का सदुपयोग करता रहा जिसके फल से ये स्वर्ग में जाकर के देव हुआ था, वहाँ से च्युत होकर के तुम दोनों भाई पूर्व स्नेह के कारण एक ही माँ के गर्भ से जुड़वा बालक पैदा हुये। तेरा भाई पुण्य लेकर आया और तू पाप लेकर आया। वह पाप करके अपने पुण्य को काटता गया-काटता गया इतना क्षीण पुण्य कर लिया कि आज इसका राज्याभिषेक होना था ये इस देश का राजा बनना था, पाप कर्मों में लगे रहने से इसका मात्र इतना पुण्य रह गया कि चंद सोने के सिक्कों की थैली मिली।

महानुभाव! हमारा जीवन भी पुण्यकार्य करने से, धर्म के कार्य करने से तप-त्याग करने से ही सफल और सार्थक हो

सकता है। तो जीवन का सार क्या है उस सार को प्राप्त करने में ही सार्थकता है।

अब सार्थकता की तलाश करनी है और तलाश तब होती है जब तीव्र प्यास होती है। तीव्र प्यास के साथ-साथ उसमें आस हो कि यहाँ से मेरी आस पूरी हो जायेगी, अंतरंग में विश्वास हो। उसके बाद होती है तलाश।

व्यक्ति पानी के लिये नहीं दौड़ता, प्यास व्यक्ति को दौड़ाती है पानी की ओर। प्यासा मृग, मृगमरीचिका को ही पानी मानकर दौड़ता है।

**मोह रूप मृग तृष्णा जग में, मिथ्याजल चमके।**
**मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ दौड़े थक-थक के॥**
**जल नहीं पावे प्राण गँवावे भटक-भटक मरता।**
**वस्तु पराई माने अपनी भेद नहीं करता।**
**तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।**
**मिले अनादि यतन तें बिछड़ें ज्यों पय अरु पानी॥**
**रूप तुम्हारा सबसों न्यारा भेद ज्ञान करना**
**जौ लों पौरुष थके न तौलों उद्यम सो चरना॥**

इस भावना को समझने का प्रयास करना है। यह कौन नहीं जानता कि इस देह में से प्राण निकल जायें तो लोग जाकर फूंक देंगे, इस मिट्टी की काया की कोई सार्थकता नहीं है। किन्तु फिर भी इससे कितनी प्रीति है, कितना मोह है, राग है। इसके लिये न्याय-अनीति-अत्याचार क्या-क्या नहीं कर रहे।

एक बार आत्मा ने शरीर से कहा- शरीर! मैं तेरे लिये इतने अन्याय करता हूँ, पाप करता हूँ, तू अब मेरे साथ चल। शरीर

कहता है- आत्मन्! मैं इन्द्र-नरेन्द्र-धरणेन्द्र किसी के साथ नहीं गया, चक्रवर्ती-कामदेव के साथ नहीं गया, मेरा अनादि से स्वभाव ही ऐसा है कि मैं किसी के साथ नहीं जाता। तू अपने स्वभाव को भूलकर मुझे अपना मान बैठा है ये तेरी भूल थी, मैं अनादि से जीव के साथ हूँ पर जानता हूँ मैं जीव नहीं पुद्गल हूँ। जीव स्वयं को भूलकर मुझे अपना मान लेता है। मैं कभी किसी के साथ नहीं जाता, शरीर यहीं छूट जाता है।

एक महात्मा फकीर भ्रमण करता हुआ नगर-नगर डगर-डगर गया। किसी एक धनी सेठ से मिला, धनी सेठ ने महात्मा को देखकर कहा- कहो महात्मन् क्या विचार है, क्या चाहोगे, क्या खाओगे, क्या पीओगे? महात्मा ने कुछ नहीं कहा निगाह नीची कर ली समझ गये सेठ के मन में अहंकार है। महात्मा बोले- लगता है सेठ जी आप बहुत बड़े आदमी हैं। सेठ बोला- ठीक समझा। मैं बहुत बड़ा आदमी ही नहीं, इस नगर का श्रेष्ठी भी हूँ। राजा भी कई बार मेरे से कर्ज लेने आता है। महात्मा जी बोले- फिर तो आपके पास अपार सम्पत्ति है। आपके लिये कोई कार्य कर पाना असंभव नहीं है। जी महात्मा जी! मेरे लिये कोई कार्य कठिन व असंभव नहीं। महात्मा जी बोले- सेठ जी! मुझे ऐसे ही व्यक्ति की तलाश थी, मेरा एक छोटा-सा काम है यदि आप वह काम कर दो तो मेरा जीवन सफल और सार्थक हो जायेगा। मुझे सार्थकता की तलाश है, मैं उसकी तलाश में फकीर बन गया हूँ, सब छोड़कर आ गया। सेठ बोला- जल्दी बताओ क्या कार्य है। महात्मा जी बोले- सेठ जी! मैंने यह कार्य बड़े-बड़े सेठ, राजा-महाराज सबसे कहा, सबसे खूब प्रार्थना की किंतु कोई नहीं कर पाया। सेठ ने सोचा- ऐसा कौन सा कार्य

है, मुझे बताओ। उस फकीर ने अपने कपड़े में से छोटी-सी सुई निकाली और उसे देते हुये कहा- आप इसे ग्रहण करो और जब मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँ, और आप भी मृत्यु को प्राप्त हो जाओ तब ये सुई मुझे वापस लौटा देना। सेठ बोला- ठीक है लौटा देंगे।

सेठ ने आवेश में कह तो दिया, जब लौटकर घर आया तो सोचने लगा यह कैसे संभव है। और अपने सैनिकों से कहा- जाओ उस फकीर को बुलाकर लाओ, जब ये मर जायेगा तो इसका पता ठिकाना कैसे पता चलेगा। फकीर ने कहा न मेरी ड्रेस है न एड्रेस है मुझे नहीं पता मेरी आत्मा को कहाँ ठिकाना मिलेगा। पर आपने मुझे वचन दिया है कि आप मुझे खोजकर के ये सुई वापस कर दोगे। सेठ सोचने लगा जब मैं मरूँगा तो सुई लेकर कैसे जाऊँगा, कहाँ रखूँगा, मैं अपनी चमड़ी में लगाकर भी रख लूँ तो वह चमड़ी भी यहीं रह जायेगी, क्या करूँ सुई कैसे ले जाऊँगा, जब बड़े-बड़े राजा महाराजा ये कार्य नहीं कर पाये तो मैं कैसे कर पाऊँगा, मैंने वचन कैसे दे दिया। जब सेठ को थोड़ा बोध हुआ तब आँखों से आँसू बहाता हुआ आया और महात्मा के पैर पकड़ कर क्षमा याचना करने लगा।

महात्मन्! जिसकी तलाश आपको थी वह चीज आपको तो प्राप्त हो ही गयी होगी किंतु मुझे भी वह चीज मिल गयी। मुझे जीवन में वह मिल गया जिससे जीवन सफल और सार्थक होता है। संसार का कोई भी व्यक्ति अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं जा सकता। पुण्य-पाप मात्र साथ ले जा सकता है।

महानुभाव! हम भी अपने जीवन में सार्थकता की तलाश करें। देखतें हैं आपके जीवन में यह दीप कब जलेगा, आप कब

सार्थकता की तलाश करोगे? अभी तो आप दुनियादारी में फँसे हो। चार कषायों के पोषण में, चार संज्ञाओं की पूर्ति में, चार प्रकार के आर्त्त-रौद्र ध्यान में लगे हैं। हमारे जीवन का समीचीन उद्देश्य क्या होना चाहिये और क्या है, हम अभी ये समझ ही नहीं पा रहे। जब समझेंगे नहीं तो अपने जीवन को सफल कैसे करेंगे। इतनी ही बातों के साथ कि हम अपने जीवन में सार्थकता की तलाश करें, ऐसी चीजों को खोजने का प्रयास प्रारंभ कर दो जिससे तुम्हारा जीवन भी सफल और सार्थक हो जाये। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

**॥ श्री शांतिनाथ भगवान् की जय ॥**

# हकीकत का चिराग

धर्मस्नेही, सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!

जिनशासन की निर्मल और अक्षुण्ण परम्परा में तीर्थंकरों के उपरांत समान्य केवली और श्रुत केवलियों की परम्परा इस भारत भूमि पर अनुस्यूत रूप से चलती रही। जिन्होंने अपनी आत्मा का कल्याण ही नहीं किया, भव्य प्राणियों के कल्याणार्थ ऐसे सूत्रों को प्रदान किया जिन सूत्रों में आज भी जीवंतता दिखाई देती है। उसके उपरांत आचार्य परमेष्ठियों की निर्मल और स्वच्छ परम्परा रही, उन आचार्य परमेष्ठी ने स्वयं पंचाचार का पालन करते हुये अपने शिष्यों से पंचाचार का पालन कराया। इसके साथ-साथ श्रुत आर्णव का संवर्धन भी किया। उनकी ये महती कृपा रही, जो आज हमारे पास श्रुत अमृत के रूप में उपलब्ध है। यदि आज हमारे पास साहित्य नहीं होता, यदि आज हमारे पास सम्यक् वाणी न होती, तो हम कल्याण के मार्ग पर चलने में असमर्थ होते, कोई भी व्यक्ति अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकता।

वह श्रुत एक ऐसा सूर्य है जो केवलज्ञान की अनुपस्थिति में मोक्षपंथ को आलोकित करने में समर्थ है। आचार्य समंतभद्र स्वामी एक ऐसे प्रामाणिक, नैय्यायिक, वाग्मीक्, सिद्धांतविद् एवं आध्यात्मिक आचार्य हुये जिन्होंने क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर बाल्यावस्था में ही दीक्षा को स्वीकार कर और उपसर्गों को समता से सहन करते हुये जिनशासन की महती प्रभावना की। वे आचार्य भगवन् एक नहीं अनेक कलाओं और विधाओं के पारगामी रहे, उनके बारे में यहाँ तक कहा जाता है कि वे भविष्य में तीर्थंकर पद को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करेंगे। उन आचार्य समंतभद्र

स्वामी ने कई ग्रंथों का लेखन किया उनमें से कुछ ग्रंथ आज उपलब्ध हैं। लेखन में उन्होंने षट्खण्डागम की टीका 'कर्मपद्धतिटीका' लिखी, प्राकृतव्याकरण भी लिखा, शब्दानुशासन भी लिखा, जीवसिद्धि अधिकार भी लिखा अन्य भी ग्रंथ लिखे किन्तु ये वर्तमान काल में उपलब्ध नहीं। एक टीका तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ पर 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नाम से लिखी वह भी आज उपलब्ध नहीं। उपलब्ध ग्रंथों में आप्त मीमाँसा, युक्त्यानुशासन, वृहद्स्वयंभू स्तोत्र, रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि हैं। और एक ग्रंथ बड़ा अनूठा है जिसमें अलंकार से युक्त व्याकरण के माध्यम से छंदों का लेखन किया, जिसका नाम है 'स्तुतिविद्या'।

महानुभाव! आचार्य महाराज का प्रत्येक ग्रंथ ऐसा लगता है जैसे अमृत कलश, प्रत्येक कारिका में ज्ञानामृत है। श्रावकों के लिये उपयोगी रत्नकरण्ड श्रावकाचार आज भी 1700 वर्षों के उपरांत उतना ही नूतन और प्रमाणिक दिखायी देता है, जितना आज से 1700 वर्ष पहले भी था। उस ग्रंथ की प्रत्येक कारिका में श्रावकों की जीवन चर्या को, शब्दों में चित्र की झाँकियों को जैसे भर ही दिया हो। जैसे आपकी छोटी सी चिप/पेनड्राइव होती है उसमें बहुत सारा डेटा आ जाता है, ऐसे ही एक-एक कारिका में मानों श्रावक का सचित्र वर्णन ही कर दिया हो। सर्वप्रथम धर्म का मूल वह सम्यक्त्व, श्रद्धान, रुचि, प्रतीति, आस्था, निष्ठा इन शब्दों के माध्यम से ही किसी भी व्यक्ति के जीवन का प्रारंभ होता है। ये शब्द जब आत्मा में जाकर एकमेक हो जाते हैं न केवल शब्द, वरन् शब्दों से इंगित किया जाने वाला भाव, उसी समय से आत्मा कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है।

आचार्य महोदय स्वयं लिखते हैं-

**न सम्यक्त्व समं किंचित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।**
**श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व समं नान्यत्तनुभृताम्॥34॥**

"शरीर को धारण करने वाले संसारी प्राणियों के लिये, सम्यक्त्व के समान कोई दूसरा नहीं है। तीनों कालों और तीनों लोकों में इसके समान कोई कल्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व के समान अकल्याणकारी दूसरा कोई घटक नहीं है।"

मिथ्यात्व ही संसार का खूँटा है। जीवन में जब तक मिथ्यात्व है तब तक संसार के खूँटे से ये आत्मा छूट नहीं सकती। और यदि मिथ्यात्व छूट गया तो समझो संसारी प्राणी की रस्सी अब खुल गयी, अब वह बंधनों को तोड़कर के मुक्त हो सकता है। सम्यक्त्व क्या है? उसको इतना महत्त्व क्यों दिया? ऐसी क्या विशेषता है?

लोकव्यवहार में एक शब्द सुनने में आता है 'विश्वास'। विश्वास शब्द का अर्थ आप करते हैं, कि संसार जो चल रहा है वह विश्वास से चल रहा है, यदि एक दूसरे पर भरोसा नहीं रहे तो संसार में तुम सब सकुशल जी न सको। आप पुद्गल पर भी भरोसा करते हो, व चेतन पर भी भरोसा करते हो क्यो? यहाँ बैठे हैं इस छत के नीचे तुम्हें विश्वास है भरोसा है कि ये गिरेगी नहीं, अपने घर में रहते हो, विश्वास है मकान गिरेगा नहीं, अपने मित्र पर भरोसा है इसलिये उसे कोई भी वस्तु दे देते हो। आपको भरोसा है डॉक्टर पर आप शरीर समर्पित कर देते हो यदि कोई रोग है तो हस्ताक्षर करके भी दे देते हो कि डॉक्टर साहब की कोई गारण्टी नहीं यदि रोगी उपचार करने के दौरान कहीं मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा तो उसके परिवारीजन कोई क्लेम नहीं कर सकते। वकील को आप अपनी फाइल सौंप देते हैं, वह कहता

है मैं जिताने की कोशिश करूँगा पर आप हार भी जायें तब भी उस पर क्लेम नहीं कर सकते। और भी कई ऐसे लोग हैं जिन पर आपको विश्वास है। विश्वास न हो तो आपका जीवन क्षेमकुशल के साथ नहीं चल सकता।

दूसरा शब्द आता है 'आत्म विश्वास' जहाँ-जहाँ आपका विश्वास होता है वहाँ-वहाँ आपके कार्य होते हैं किन्तु आत्मविश्वास उससे और भी ज्यादा बढ़कर है। जो आत्मविश्वासी है वह कहता है मैं अपने पुरुषार्थ के बल से ऐसा करके ही रहूँगा और जब आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में उस कार्य के प्रति पूर्ण समर्पण होता है, पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करता है, वह आत्मविश्वासी ऐवरेस्ट की चोटी भी चढ़ जाता है उसके लिये कोई चीज दूर नहीं है। वह जानता है मंजिल कितनी भी ऊँची हो पर जब आत्मविश्वासी चलता है तब वह राह/मंजिल उसके कदमों के नीचे आ जाती है।

'आत्म विश्वासी' इस भौतिक जगत में लौकिक कार्यों की सिद्धि करता है। एक विद्यार्थी ने संकल्प किया कि मैं कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करके रहूँगा, उसने उसके अनुरूप पुरुषार्थ किया, मेहनत की, वह निष्ठा के साथ लगा रहा और अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया। या कोई व्यवसायी संकल्पित होता है कि मुझे इस वर्ष इतना प्रोफिट चाहिये ही चाहिये उसका आत्मविश्वास बोलता है और वह उतना प्रोफिट कमा लेता है। आत्मविश्वास के माध्यम से इन भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति होती है किंतु आत्मविश्वास से प्राप्त हुई वस्तुएँ उन सबसे बढ़कर के होती हैं जो कि विश्वास से प्राप्त हुई हैं। उससे संतोष व शांति मिलती है, कुछ आनंद आता है। किन्तु उससे आगे, एक कदम और आगे बढ़े तब आता है सम्यग्दर्शन।

वह तीसरी चीज है, जब वह जीवन में आता है, तब उसके जीवन में आस्था जाग्रत होती है, अपने इष्ट-आराध्य परमात्मा के प्रति। अभी जो विश्वास किया था, वह दूसरों के प्रति किया, पुनः जागरण किया तो आत्मविश्वास की जाग्रती हुयी, उसके उपरांत आगे बढ़े तो जो उससे अधिक सर्व शक्तिमान है, सर्वदर्शी है, सर्वज्ञ है, सर्वसुखी है, जन्ममरण के बंधनों से मुक्त है, कर्मों की कालिमा जिसे छू नहीं सकती, जो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित है जो कर्मातीत-देहातीत है-संसारातीत है, जो अनंतकाल के लिये सिद्धालय में जाकर विराजमान हो गयी, ऐसी भी कोई आत्मा है। वह देखने में इन चर्म चक्षुओं से नहीं आ रही, उसे किसी व्यक्ति के सामने शब्दों से सिद्ध भी न कर पाओ पर श्रद्धा तो आत्मा के प्रेदशों में होती है।

आत्मविश्वास में मन का बहुत बड़ा कार्य होता है, किंतु श्रद्धा में पूरा का पूरा कार्य आत्मा के प्रदेशों से ही होता है। जिसके आत्मा के प्रदेशों में जो बैठ गया, बस अब उसे हिलाया नहीं जा सकता। वह कहता है मेरी आत्मा में मेरे भगवान् विराजमान हैं, कोई मुझसे घर छीन ले पर मेरा भगवान् नहीं छीन सकता, मेरी सम्पत्ति तो क्या मेरे प्राणों को/शरीर को भी छीन ले तब भी मेरे अंदर के श्रद्धा के भगवान् को नहीं छीन सकता। श्रद्धा के भगवान् बाहर से नहीं आते अंदर से प्रकट होते हैं। यदि बाहर से आ जायें तो व्यक्ति अपने हार्ड का ऑपरेशन कराता है। सर्जरी कराके थोड़े से स्थान में कोई मूर्ति अंदर रख ले। तो ऐसे भगवान् स्थापित नहीं होते। जैसे किसी कूप में श्रोत के द्वारा जल स्वयं प्रकट होता है, दीपक में ज्योति स्वयं प्रकट होती है, सूर्य में प्रकाश स्वयं प्रकट होता है, पुष्प में गंध प्रकट होती है, मेंहदी

में लालिमा प्रकट होती है स्वयं अंदर से, ऐसे ही आत्मा के प्रदेशों में अंदर से ही आस्था स्वयं प्रकट होती है उसे बाहर से थोपा नहीं जा सकता। लिबास की तरह ओढ़ा नहीं जा सकता, पगड़ी और मुकुट की तरह से धारण नहीं किया जा सकता, सिंहासन की तरह से उस पर सवार नहीं हुआ जा सकता वह श्रद्धा तो आत्मा का विषय है। इसको किसी दीवार का इस्तेहार मत समझो ये आत्मा की बात है, आत्मा में ही रहती है। जो आत्मा के बाहर निकल गयी जरूरी नहीं कि वह सम्यक् है या मिथ्या, वह शब्दों का ढेर भी हो सकती है।

शब्दों की प्रमाणिकता इस बात में तो है कि तुम्हारे शब्द प्रमाणिक हैं, किन्तु वे शब्द तुम्हारी श्रद्धा को प्रमाणित नहीं कर सकते।

महानुभाव! एक महिला युवा अवस्था में ही वैधव्यपने को प्राप्त हो गयी। वह महिला निर्मल चित्त की धारक थी, उसका पति देवराज एक निष्ठावान्, धर्मात्मा, सरल सहज व्यक्तित्त्व का धनी था। जब उसकी पत्नी गर्भवती हुयी तभी अकस्मात् देवराज का निधन हो गया। उसकी पत्नी विमलप्रभा अपने गर्भस्थ शिशु का पालन करती हुयी दुःख के साथ उस समय को निकाल रही थी, उसका पति क्या चला गया, मानो उसके प्राण ही निकल गये। जीवन न जाने एक विशेष गणित है वैसे दो में से एक जाता है तो एक बचता है किंतु युगल में से एक चला जाये तो शून्य बचता है। सारस के विषय में आता है दोनों में से एक चला जाये तो दूसरा जीवित नहीं रह पाता। जिस दम्पत्ति का कंठ एक हो, हृदय एक हो आचार्य अजितसेन स्वामी ने क्षत्र चूड़ामणी ग्रंथ में लिखा है- **"दंपत्योरेकंठयोः"** "जिन दोनों का एक कंठ हो

वह दम्पत्ति हैं" जिनके स्वर अलग-अलग निकलते हों वे दम्पत्ति नहीं वरन् साथ-साथ रहने वाले लोग हैं। एक स्वर वाले दाम्पत्य जीवन में नि:संदेह सुख शांति होती है।

वह विमलप्रभा वैधव्य अवस्था को धारण किये हुये, अपने पति का निरंतर चिंतवन करती थी किन्तु गर्भस्थ शिशु को संभालते हुये समय आने पर उसने एक पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र भी पिता के अनुरूप गुणों को धारण करता हुआ सरल-सहज और सुंदर था, उसका नाम रखा जिनेन्द्र भक्त। उसे लाड़-प्यार से पाला, अच्छे संस्कार भी दिये। पर न जाने विधाता को क्या मंजूर है, कुछ दिनों बाद विमलप्रभा का भी देहान्त हो गया। वह बालक अनाथ असहाय जैसा हो गया। समीपवर्ती किसी रिश्तेदार ने जिसके पास भी कोई पुत्र नहीं था, उसका पालन पोषण किया। किन्तु जिसने पालन किया था वह भी वैधव्य के भार से दबी जा रही थी अर्थात् वह भी विधवा थी। उसने अपने पुत्र समान ही उसका पालन किया। वह लोकव्यवहार से बहुत डरती थी कहीं कोई ये न कह दे कि ये तेरा बेटा नहीं है इसलिये इसका ध्यान नहीं रखती। इसलिये वह सगी माँ से भी ज्यादा उसका ख्याल रखती थी।

उसके पास ज्यादा सम्पत्ति तो थी नहीं, एक झोपड़ी में अपना गुजारा करती थी। वह बालक लगभग 5-6 वर्ष का हो गया, माँ ने सोचा मैं इसे बहुत लाड़ प्यार करती हूँ, कहीं ये बिगड़ न जाये, इसका भविष्य कैसे बनेगा, अब इसे आस-पास के स्कूल में दाखिल करवा दिया जाये। वह पुत्र के अक्षर ज्ञान के लिये आस-पास के स्कूल गयी पर स्थान नहीं मिला, वह दूरवर्ती स्कूलों के लिये नदी व जंगल को पार करती हुयी गयी वहाँ

देखा एक जगह गुरुकुल है। अपने बेटे को प्रतिदिन गुरुकुल छोड़ने जाती और लेने जाती। वह गरीब बेचारी उदर पूर्ति हेतु दूसरों के यहाँ जाकर चौके चूल्हे का काम करती उसके उपरांत जो मिलता था उससे पुत्र के व स्वयं की उदर पूर्ति करती। अब जब पुत्र को सुबह छोड़ने जायेगी शाम को लेने जायेगी तो गृहस्थों के घर काम कब करेगी। बड़ी परेशान, बेटा कहे मैं स्कूल नहीं जाऊँगा रास्ते में जंगल पड़ता है उस जंगल में मुझे डर लगता है। रात्रि में बेटा तो सो गया पर वो भगवान् को याद कर रो रही है प्रभो! क्या मैं अपने बेटे को पढ़ा नहीं पाऊँगी, क्या मेरा बेटा ऐसे ही अनपढ़ रह जायेगा अब आप ही बताओ मैं लेने जाऊँ, छोड़ने जाऊँ तो उदर पूर्ति कैसे होगी।

उसे अंदर से आवाज आयी, चिंता न करो, तुम अपने बेटे से कहो-तुम्हारे पिता जो सबके पिता हैं देवराज, वो बहुत बड़े राजा हैं जंगल में अदृश्य रूप से रहते हैं। उसने वैसा ही किया। अगले दिन प्रातः वह स्कूल छोड़ने तो गयी किन्तु शाम को लेने नहीं गई जब बेटा अकेला आ रहा था जंगल में सूखे पत्ते पड़े थे, उन पर पैर पड़ते ही चर-चर की आवाज आती उसे लगा पीछे कोई आ रहा है। बेटा डरने लगा कहीं यहाँ भूत न हो। वह वहाँ बैठकर आवाज लगाता पिताजी-पिताजी। बेटे को ऐसा लगा कि कोई और भी आवाज लगा रहा है। वह कुयें के पाट के पास बैठ गया, और फिर आवाज लगायी पिताजी। वहाँ एक व्यंतर देव रहता था उसने बच्चे की आवाज सुनकर कहा कहो वत्स क्या कहते हो, बोला पिताजी मुझे डर लगता है। आवाज आयी, बेटा तुम निर्भीक रहो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। अब तो वह बालक बहुत खुश हो गया। माँ के पास जाकर कहता है माँ आपने ठीक

कहा था पिता जी जंगल में रहते हैं।

बेटा रोज गुरुकुल जाता, कुयें के पाट पर बैठता, पिता को बुलाता और कहता पिता जी मुझे कोई और अच्छी शिक्षा दो। तभी आवाज आती है बेटा! सदा सत्य बोलो। पुनः एक दिन पिता से शिक्षा माँगी-पिता ने कहा बेटा- विनम्र बनो। ऐसे ही रोज शिक्षा माँगता पिता ने कहा- अपना जीवन पुरुषार्थ सिद्ध रखो, पुनः आवाज आयी- बेटा प्रेम व वात्सल्य ही व्यक्ति का प्राण है, बेटा! ईमानदारी सदा फलीभूत होती है इस प्रकार से उसे कई बार शिक्षायें मिलीं। अब वह बहुत आनंदित रहने लगा, उसे लगने लगा जैसे मैं परम पिता का बेटा हूँ। अब उसे अपने पिता का अभाव खल नहीं रहा, मेरे पिता तो भगवान् हैं। उनका नाम भी देवराज है।

एक दिन वह स्कूल जाता है। विद्यालय में वार्षिकोत्सव था, सभी विद्यार्थियों को अपने घर से कुछ न कुछ लाना था। वह सोचता मैं क्या लेकर जाऊँगा। माँ से कहा- माँ हमारे गुरुकुल में अन्य विद्यालय के बच्चे भी आयेंगे, हमारे गुरुकुल में तो राजकुमार बालक भी पढ़ते हैं, मंत्री पुत्र, सेठ पुत्र भी पढ़ते हैं किन्तु मैं तो सबसे गरीब हूँ मैं क्या लेकर जाऊँ, सभी कुछ न कुछ लेकर आयेंगे। माँ कहती बेटा चिंता मत कर कल बता दूँगी। शाम हुयी बेटा सो गया माँ की आँखों में पुनः आँसू। भगवान् से कहती है बताओ प्रभु! मेरे पास देने को क्या रखा है। ये जीर्ण शीर्ण दो साड़ी, एक चारपाई कुछ 4-5 बर्तन हैं और आपकी तस्वीर है, इसके अलावा मेरी झोपड़ी में क्या है, जो मैं अपने बेटे को दे सकूँ।

अंदर से आवाज आयी तू चिंता क्यों करती है, जब बालक

का श्रद्धान है देवराज के प्रति, उसे वह परम पिता के रूप में मानता है, वही उसकी सहायता करेगा। तू बेटे से कह देना- तू अपने पिता/परमपिता जिस रूप में उन्हें मानते हो उनसे ही कहना, वे तुम्हें अच्छी शिक्षा देते हैं अच्छी बातें बताते हैं वे तुम्हें अवश्य कुछ न कुछ देंगे। बेटा पहुँचा कुयें के पाट पर। उसके मन में कोई चिंता-विकल्प नहीं। माँ ने कह दिया है माँ कभी झूठ नहीं बोलती वह जाकर आवाज लगाता है। आवाज आयी- कहो क्या चाहते हो। उसने कहा- पिताजी आज गुरुकुल में सभी अन्य स्कूलों के विद्यार्थी-अध्यापकगण आयेंगे, सभी गुरुकुल के बच्चों को उनका सम्मान करना है, दावत में भी कुछ देना है। सभी बच्चे कुछ न कुछ लायेंगे, मैं भी सबका सम्मान करना चाहता हूँ।

आवाज आई-सामने जो चीज रखी है उसे लेकर के चले जाओ। उसने देखा तूमड़ी रखी है, तूमड़ी में थोड़ा-सा दूध रखा है। दो डिब्बी रखी हैं एक में केशर एक में माला रखी है। सबका केशर से तिलक करना, माला पहनाना व दूध पिलाना। वह सोचता है इस तुमड़ी के थोड़े से दूध से एक का भी पेट नहीं भरेगा। और वे कह रहे हैं सबको पिलाना है। आज तो मेरी बेइज्जती सबके सामने हो जायेगी, क्या करूँ, माला भी एक ही है वो भी लकड़ी की सी दिखाई दे रही है, केशर की एक पांखुड़ी है जिससे एक के भाल पर भी तिलक नहीं हो पायेगा अब मैं क्या करूँ पिताजी की आज्ञा टाल नहीं सकता।

वह पहुँचा, अध्यापक ने कहा देरी से क्यों आये, उसने सब बातें बता दी, मैं अपने पिता से मिलने गया था वहाँ मुझे देरी हो गयी। ठीक है, ये बता क्या लाया है। उसने तुमड़ी दिखाई, गुरुजी

बोले-ये दूध, ये तो किसी के दाँत में ही भर जायेगा कंठ तक भी न जा पायेगा, जा इसे लौटाकर ले जा, वह बालक बोला- नहीं मेरे पिता ने दिया है। मेरी माँ ने आज्ञा दी थी इसे वापस लौटाकर नहीं ले जाऊँगा, गुरुजी बोले- अरे! इससे तो किसी चींटी का भी पेट नहीं भरेगा, बालक बोला पेट भरे न भरे पर मैं अपने पिता जी की आज्ञा का पालन करूँगा। ठीक है मैं पहले यह दूध एक गिलास में डालूँगा, जैसे ही दूध डाला, दूध गिलास से बाहर फैलने लगा, दूसरे गिलास में डाला, डालते-डालते सभी को दूध दे दिया पर तूमड़ी का दूध कम नहीं हुआ। पुनः उस केशर की पांखुरी से सबके भाल पर तिलक लगाता है, वह अंदर से बड़ा खुश हो रहा है कि मेरे पिता वास्तव में बड़े महान् हैं, और खुशी-खुशी माला उठायी, जो दिखने में सूखी लकड़ी की सी लग रही थी, वह फूलों में परिवर्तित हो गयी। कल्पतरु की वह माला एक-दो के नहीं सभी के गले में डालता है। लोग आश्चर्य में भर जाते हैं। सभी लोगों का ध्यान उस बालक पर जाता है कि ये बालक इतना गरीब है ये चीज लाया कहाँ से, कहीं किसी राजा के यहाँ से चोरी करके तो नहीं आया। वह बोला- मैंने चोरी नहीं की, और ना मैं कभी झूठ बोलता हूँ, अध्यापक बोले- बहस करता है? बोला नहीं- मैं तो आपको विनम्रता से उत्तर दे रहा हूँ मैं ईमानदारी का परिचय दे रहा हूँ यही मेरे पिता जी ने समझाया है।

बालक की आँखों में आँसू आ गये। लोगों ने कहा ये बालक ईमानदार हो सकता है, इस वक्त इसकी आँखें नहीं दिल रो रहा है। इसके सत्य को, इसकी यथार्थता को जानने का प्रयास करें। पुनः पूछा- कहाँ हैं तुम्हारे पिताजी? बोला- जंगल में। वह नदी

पार करके जंगल में जाता है और कुएँ के पास बैठकर आवाज लगाता है पिताजी-पिताजी किंतु लौटकर कोई आवाज नहीं आयी। वहाँ उसके साथ आये अध्यापक कहने लगे- देख लिया? तुम्हारा झूठ पकड़ में आ गया, यहाँ कोई नहीं है, तुम किसी राजा के यहाँ से ही चोरी करके ये सब लाये हो, तुमने ही ये जादुई वस्तुयें चुरायी हैं।

बालक बस यही कहता रहा नहीं मेरी माँ ने, पिता ने मुझे चोरी करना नहीं सिखाया, मैंने चोरी नहीं की, और फिर से पिता को आवाज लगाने लगा, ये सभी लोग मुझे चोर कह रहे हैं मुझे झूठा सिद्ध कर रहे हैं, आप इन सभी को बताओ कि आपने ही तो ये सब मुझे दिया है। तभी आवाज आती है। वत्स! हाँ मैंने ही सब तुझे दिया है। बेटा बोला- पिता जी आप जैसे प्रतिदिन मुझे दर्शन देते हो वैसे दर्शन दो। सभी लोग स्तब्ध खड़े थे, आवाज आयी पुत्र! ये दर्शन तो उसी को होते हैं जिसके पास श्रद्धा की आँखें हों। जिसके पास श्रद्धा की आँखें नहीं होती उसे दर्शन नहीं होते। तेरे पास वह निष्ठा है, आस्था है इसलिये तुझे दर्शन होते हैं, इनके पास बुद्धि तो बहुत है, शब्द ज्ञान भी बहुत है किंतु सम्यक् श्रद्धा नहीं है।

महानुभाव! जीवन में सम्यक् श्रद्धा के बिना संसार का भौतिक वैभव तो प्राप्त हो जाता है किन्तु आत्मा की उन्नति नहीं हो पाती। यह श्रद्धा का वृक्ष ऐसा वृक्ष है जिसकी बहुत सुरक्षा करनी चाहिये। क्योंकि श्रद्धा के वृक्ष को काटने वाले, उसी की जड़ों में बिल बनाकर जो शंका के चूहे घुस गये हैं वे हमारे श्रद्धा के पेड़ को कुतरने लगते हैं। उन शंका के चूहों से अपने वृक्ष की सुरक्षा करो। हमारी फसल को जो शंका की दीमक लग

रही है उससे बचाओ, हमारे श्रद्धा के सूर्य चन्द्रमा को जो शंका का ग्रहण लग रहा है उससे बचाओ, हमारी श्रद्धा अखण्ड अडिग होनी चाहिये।

श्रद्धा एक बीज की तरह से है और शंका घुन की तरह से है। जिसके मन में देव-शास्त्र-गुरु के प्रति शंका का भाव आ गया, तो संसार की कोई भी शक्ति उसे संसार सागर से पार नहीं कर सकती। जब भी आत्मा परमात्मा बनेगी जिनेन्द्र भगवान्, सर्वज्ञ वीतरागी प्रभु पर विश्वास करके, उनकी वाणी पर विश्वास करके, उनके मार्ग पर चलने वाले निर्ग्रंथ गुरुओं पर विश्वास करके ही बन सकती है इसके बिना कोई भी आत्मा परमात्मा नहीं बनती। किंतु शंका मन में आती कैसे है?

जो व्यक्ति मिथ्यात्व से युक्त है वह मिथ्यादृष्टि व्यक्ति हमारे आस-पास रहता है, उसकी वर्गणायें हमें प्रभावित करती हैं यदि कसी असत्य को 100 बार कहा जाता है तो वह भी सत्य सा लगता है। वह जब बार-बार उल्टी बात को, मिथ्या बात को कहता है तब लगता है ये ठीक कह रहा होगा फिर हमें देव-शास्त्र-गुरु की वाणी पर विश्वास नहीं होता। अपने स्वार्थी कुटिल मित्र की बात पर भरोसा हो जाता है, जो तुम्हें संसार के गर्त में पटकना चाहता है। वह तुम्हें भगवान् से दूर करना चाहता है, जिनवाणी से दूर करना चाहता है, निर्ग्रंथ गुरुओं की पदरज से दूर करना चाहता है, वह तुम्हारा यह भव और परभव बिगाड़ना चाहता है। हम उसकी बातों में आ जाते हैं क्योंकि भगवान् हमारे बोलते नहीं और हम कुसंगति में पड़कर उनके प्रति अपनी धारणा उल्टी बना लेते हैं, जिनवाणी के शब्दों का सही अर्थ हम निकाल नहीं पाते। जो कोई दिगम्बर साधु में दोष निकाल देता

है तो हम उसकी बात मान लेते हैं। यह शंका का चूहा हमारे अंदर घुस जाता है।

एक बार एक ठाकुर व्यक्ति बाजार से गाय की बछिया को ला रहा था। कंधे पर रखकर ला रहा था। रास्ते में चार ठग मिले, उन्होंने सोचा ये बछिया तो बहुत अच्छी है, इसकी नस्ल बहुत अच्छी है, जब ये गाय बनेगी तब बहुत दूध देगी, ये हमें चाहिये, कोई उपाय करना चाहिये। एक ठग पहुँचा- वाह ताऊ! तुम्हारा ये कुत्ता बड़ा गजब का है। वह बोला- कुत्ता? कहाँ है? अरे तुम्हारे कंधे पर ही तो है। अरे! ये कुत्ता नहीं बछिया है। हाँ हाँ मान ले बछिया, पर है तो वैसे कुत्ता और कहकर चला गया। उसने कंधे से उतारा देखा कहीं ऐसा तो नहीं कुत्ता ही हो, देखा नहीं नहीं बछिया है। फिर कंधे पर रखा आगे बढ़ा। थोड़ी दूरी पर दूसरा ठग मिला बोला- वाह चौधरी साहब! क्या विदेशी कुत्ता है। पर इसे कंधे पर रखकर क्यों ढो रहे हो, अरे कुत्ता नहीं मेरी बछिया है। हाँ हाँ ठीक है जमाना बदल गया है, लोग कुत्ते को बछिया कहें या बिल्ली कुछ भी कह सकते हैं। अब वह सोचने लगा आखिर बात क्या है, कहीं ऐसा तो नहीं मैं धोखा खा गया हूँ। पुनः कंधे से उतार कर देखा, लग तो बछिया जैसी ही रही है।

थोड़ा और आगे पहुँचा तीसरा ठग वाह! वाह! ठाकुर साहब कमाल कर दिया, कुत्ता हो तो ऐसा। वह सोच में पड़ गया एक व्यक्ति को भ्रम हो सकता है, दो को हो सकता है पर अब ये भी कह रहा है कि कुत्ता है। कहीं ऐसा तो नहीं दुकानदार ने मुझे ठग लिया हो। बछिया कहकर कुत्ता बेच दिया हो, समझ तो कुछ नहीं आया, वह अनमने मन से चलने लगा। तब तक चौथा

ठग आ गया- कहने लगा- अरे चौधरी! तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया, गाँव में कुत्ते को कंधे पर रखकर क्यों घूम रहे हो। वह बोला- ये कुत्ता कहाँ है यह तो बछिया है। ठग बोला- हाँ हाँ बछिया क्यों घोड़ी कह दे, शेरनी कह दे, तेरा मुँह कुछ भी कह। जा जाकर जमाने से पूछ ले ये कौन है- लोग इसे कुत्ता और तुझे गधा कहेंगे जो तू इसे ढो रहा है। अब ठाकुर का दिमाग खराब हो गया, और यह सोचने लगा कि कहीं ऐसा न हो गाँव के लोग मुझे गधा कहें, मेरी निंदा करें उसने बछिया को उतारा और वहीं छोड़ गया, चारों ठग आये और बछिया को लेकर भाग गये।

महानुभाव! कई बार ऐसा होता है व्यक्ति बछिया की तरह हमारी श्रद्धा को लूट कर ले जाता है। और ये बात सही है कि कोई बात तुम्हारे कान में बार-बार, बार-बार कही जायेगी तो तुम्हें लगने लगता है यह सही हो सकता है। भले ही वह बात मिथ्या ही क्यों न हो।

एक व्यक्ति बड़ा निर्धन, तीन दिन से भूखा-प्यासा, जिसे भीख भी नहीं मिली जो एक अधोवस्त्र पहने हुये है, एक अंगरखा और पगड़ी बाँधे हुये, यही उसकी सम्पत्ति बांकी उसके पास कुछ भी नहीं। गिट्टी के सहारे रोड़ के किनारे बैठा मात्र पानी पीकर काम चला रहा था। रात के लगभग ग्यारह बजे वहाँ से एक सेठ निकला वह रुका, देखा कोई आदमी सो रहा है, उसे उठाया। वह बोला मैं बेसहारा, इस संसार में अनाथ हूँ जमीन बिछौना है और आकाश मेरा चादर है, बस यहीं पर अपने पाप का फल भोग रहा हूँ। सेठ ने उसे उठाया और कहा मेरे रथ में बैठ और घर ले जाकर उसे भोजन पानी करा दिया। प्रातःकाल सेठ ने उसे बुलाया पूछा- क्या नाम है तेरा? बाबू जी

आप जिस नाम से पुकारें। क्या काम करेगा? जो आप काम सौंपे। क्या खायेगा? जो चीज खिलाकर आपका मन संतुष्ट हो जाये वही मैं खा लूँगा।

सेठ ने सोचा ऐसा वफादार सेवक कहाँ मिलेगा? चलो ठीक है तुम यहीं पर रहो। वह सुबह से उठकर झाड़ू-पोंछा करता। एक बार महल के आगे उसे एक कागज मिल गया जिसे वह पढ़ने लगा। सेठ ने देखा, पूछा- तू कुछ पढ़ा लिखा भी है क्या? हाँ आपकी कृपा दृष्टि है माँ ने मुझ पर उपकार किया था मैं पढ़ लेता हूँ। ठीक है तू कल से झाड़ू नहीं लगायेगा, दुकान पर बैठेगा। सेठ ने उसे दुकान पर बैठाना शुरु किया। कब किसके पुण्य-पाप का उदय आ जाये कह नहीं सकते। वह दुकान पर बैठा, दो चार जगह काम से गया, उसका मृदु व्यवहार, उसके चेहरे की सहज मुस्कुराहट, उसकी विनम्र व मधुर वाणी सभी को अपनी ओर खींच लेती। जिस दुकान पर बैठता वहीं ग्राहकों की लाइन लग जाती। सेठ ने देखा महीने भर में दुकान पहले से बहुत ज्यादा चलने लगी। सेठ ने उसे बुलाया- कहा तुम तो व्यापार में बहुत कुशल हो। अब तुम्हारा वेतन बढ़ा देंगे, तुम अच्छे वस्त्र पहनो, खाओ पीओ यहीं रहो। अब मैं तुम्हें मुनीम बना देता हूँ तुम्हें अब सबकी-देखभाल करना है।

वह मुनीम सब नौकर चाकर सामान आदि का ध्यान रखता। जो नौकर-चाकर आलसी थे उन्हें अनुशासित किया, जिससे दुकान की आय और बढ़ी। सेठ ने पूछा- ऐसा कैसे हुआ, बोला- सेठजी जो आपके नौकर थे, वे बहुत आलसी थे, दुकान देर से खोलते, जल्दी बंद कर देते, मैंने इन सबको टाइट किया, आप मुझे क्षमा करना ये सब मेरी बुराई भी कर सकते हैं। सेठ

ने कहा- तू बहुत योग्य व्यक्ति है आज से मैं तुम्हें जितने भी मेरे मुनीम हैं उन सबका हेड बना देता हूँ।

ज्यों ही उसे मुनीम प्रमुख बनाया तो अन्य मुनीमों के हृदय में जैसे आग लग गयी हो। ये कल का व्यक्ति आज हमारा बाप बनकर बैठ गया, हम वर्षों से यहाँ कलम रगड़ रहे हैं, हमारी आँखों पर चश्मा चढ़ गया, चप्पलें घिस गयीं और ये कल का आया बेसहारा-अनाथ व्यक्ति हमारा हेड बनकर बैठ गया। क्या करना चाहिये? इधर सारे मुनीम सेठ के पास एक एक करके गये बोले- सेठ जी क्षमा करना आपको लगेगा तो बुरा पर मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जिस व्यक्ति को आप ले आये हो वह ठीक नहीं है। सेठ ने कहा जाओ-जाओ मैं देख लूँगा। दूसरा-तीसरा मुनीम आया वे भी यही बात कहने लगे। जो नया मुनीम था वह किसी से ज्यादा चर्चा भी नहीं करता अपना भोजन करता, अपने काम से काम और अपने कमरे में रहता। जब वह अपने कमरे में जाता था, अंदर से किवाड़ बंद कर लेता, उसके कमरे में एक संदूक रखा था, उस संदूक का ताला खोलता उसमें से कुछ निकालता-रखता, पता नहीं क्या करता।

वह यह कार्य प्रतिदिन करता था। अन्य मुनीमों ने छिपकर यह कृत्य कई दिन लगातार देखा। और सेठ के पास कभी एक, दो तीन सभी मुनीम जाते और उनके कान भर देते। बीसीयों साल पुराना मुनीम भी पहुँचा बोला- सेठ जी मैं आपके पास आना नहीं चाहता था, आपका व्यापार अभी तक न जाने कहाँ से कहाँ तक पहुँच जाता, आप जिस पर विश्वास कर रहे हो वह आपका घातक है, वह आपके प्राणों को लेकर रहेगा, व्यापार चौपट कर देगा। ये कहीं से कुछ भी ले जाता है इसके

पास कितना धन है, कितने नोट हैं इसका कहीं हिसाब नहीं। सेठ जी बोले- वह बहुत सज्जन व्यक्ति है। ठीक है- मान लो, जब सीने में छुरा भौंकेगा तब पता चलेगा। सेठ जी ने सोचा इतनी बड़ी बात ये लोग कर रहे हैं, दिमाग भी खराब हो गया, पर सोचा कानों सुनी बात सर्वत्र ठीक नहीं होती। कान-आँख में भले ही चार अंगुल का अंतर हो किन्तु सत्य झूठ में बहुत अंतर है कानों सुनी झूठी व आँखों देखी सत्य होती है।

सेठ जी चुपचाप उसकी निगरानी करने लगे। वह कब आता, कहाँ जाता, क्या करता सभी पर दृष्टि रखने लगे। उन्होंने देखा हाँ वास्तव में इसके कमरे में संदूक तो रखा है, इसमें ताला लगा है। यह प्रतिदिन ताला खोलता है कुछ करता है संदूक में खटर-पटर होती है। कोई बात तो है। सेठ जी का मन शंका से भर गया, उसे बुलाया-बेटा इधर आना। बोला जी सेठ जी! सेठ जी ने उसका स्वास्थ्य आदि पूछा, पर उनकी हिम्मत नहीं हुयी कि वे उससे कुछ पूछ सकें, पर पुनः उनके मन में शंका हुयी कही ये मुझे बर्बाद न कर दे। फिर बुलाया। वह व्यक्ति भी समझ गया, लगता है सेठ जी के मन में कोई बात है।

सेठ जी! आपके मन में कोई बात है तो आप निःसंकोच मुझसे पूछ लें। सेठ जी को लगा ये अपनी सफाई पेश करना चाहता है। तीसरी बार सेठ जी स्वयं उसके कमरे में आ गये। पूछने लगे- यह क्या है? संदूक है, इसमें क्या है? वह व्यक्ति रोने लगा, सेठ जी के पैरों में गिर गया, कहने लगा- इसमें जो कुछ है वह मैं आपको दिखा नहीं सकता। सेठ जी और गर्म हो गये, इसका आशय जरूर इसमें कुछ न कुछ है। तब तक 10-5 मुनीम भी आ गये, हाँ सेठ जी इसी में कुछ है। पर बालक की आँखों से

टप-टप आँसू टपक रहे हैं, वह कहता है- पिताजी! आपने मुझे प्राण दिये हैं, आप मेरे अन्न दाता हैं, आप इस संदूक का ताला मत खुलवाओ। सेठ जी क्रोध में बोले- तुम तो वही हो जो जिस थाली में खाता है उसी में छेद करता है। गद्दारी करते हो, तुमने इसमें हीरे-मोती छिपा रखे हैं, तू मुझे मारकर स्वयं सेठ बनना चाहता है। वह बेचारा आँसू को पोंछकर, सिसकियों को रोककर कहता है- मैंने तो आपको अपना भगवान् माना था, यदि मेरे भगवान् को ही मुझ पर अविश्वास हो गया तब ठीक है मैं आपकी तसल्ली कर देता हूँ और ताला खोलकर दिखाया।

सबकी सोच यही थी कि संदूक का ताला खोलते ही इसमें से हीरे मोती निकलेंगे किन्तु देखते ही सब अवाक् रह गये। सेठ भी कुछ नहीं कह पाया-संदूक में वे तीन कपड़े थे जिन्हें पहनकर वह आया था, वही अधोवस्त्र, अंगरखा और पगड़ी। उसने कहा- सेठ जी मैं इन तीनों को प्रतिदिन देखता था। तीनों समय कमरा बंद कर इन्हें देखता हूँ क्योंकि मुझे मेरी औकात मालूम है। जब मैं आपके यहाँ आया, तब किस रूप में आया था। कहीं मेरे मन में अहंकार न आये। मैं इसे मेरी सम्पत्ति मानकर देखता था। मुझे पता था कहीं कोई मेरी चुगली कर सकता है, आपके कान भर सकता है। और कभी आपने मुझे निकाल दिया तो मैं जानता था, ये पूरी सम्पत्ति आपकी है, जब तक आपके यहाँ काम कर रहा हूँ तब तक ही सब प्रयोग कर रहा हूँ किंतु वह सब कुछ आपका है, जब मैं यहाँ से जाऊँगा, अपना भाग्य लेकर जाऊँगा। अब तो सेठ जी की आँखों से आँसू बहने लगे, बालक को हृदय से लगा लिया- मुझे क्षमा कर दो। उसने कहा- आपके मुख से ये शब्द अच्छे नहीं लगते, किंतु मैं यहाँ अब रह नहीं सकता। उसने अपने वस्त्र

निकाले और सेठ जी के वस्त्र उन्हें वापस कर दिये। उन्हीं पुराने वस्त्रों को पहनकर वह चला गया।

महानुभाव! वह तीन वस्त्र उसकी अमानत हैं और हमारे तीन वस्त्र देव-शास्त्र-गुरु हमारी अमानत हैं। यदि ये ही हमारा छिन गया तो कुछ भी हमारे पास नहीं बचेगा। यदि हमारे प्राण हैं तो वहीं हैं। भगवान् की भक्ति, जिनवाणी के वचन, गुरुओं की सेवा से ही हमारी आत्मा परमात्मा बन सकती है। ये संसार का भौतिक वैभव हमें कब प्राप्त हुआ, कब छिन जायेगा, ये हमारे साथ जाने वाला नहीं है, हमारी असली सम्पत्ति तो वही है। जो देव शास्त्र गुरु हैं जिनसे हमें रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। इनके अलावा और कोई भी मेरे लिये कल्याणकारक नहीं है, ये ही मेरी आत्मा को परमात्मा बनाने वाले हैं। यह ज्ञान जिस दीपक से मिलता है, जिस चिराग से मिलता है वास्तव में वही है हकीकत का चिराग उसके बिना कभी भी हकीकत का बोध नहीं हो सकता है, यह हकीकत का चिराग और कुछ नहीं हमारे सम्यक्त्व की ज्योति है, हमारी श्रद्धा का सूर्य है इसी के माध्यम से हम अपने आत्मा के वैभव को देखने जानने में समर्थ हो सकते हैं इतना ही नहीं उसे प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं।

आप सभी महानुभाव उस हकीकत के चिराग की सुरक्षा करें। पहली बात तो हकीकत के चिराग को जलाना ही कठिन है। जल जाये तो संसार में बहुत तूफान चलते हैं, आंधियाँ चलती हैं आपके हकीकत के चिराग को बुझाने वाले बहुत कारण हैं। कभी शंका, कभी कांक्षा, कभी विचिकित्सा, कभी मूढ़दृष्टि कभी कोई धर्म की निंदा करने वाला आता है, कभी इस धर्म को धक्का देने की कोशिश करता है तो कोई व्यक्ति धर्मात्मा से

ही बैर बाँधकर बैठ जाता है वात्सल्य का भाव नहीं रखता, तो कोई स्वयं ही अपने जिनशासन की निंदा करने में लगा है चाहे व्हाट्सअप के माध्यम से, चाहे टी.वी. के माध्यम से, चाहे न्यूज पेपर के माध्यम से ऐसे व्यक्तियों के बीच में तुम अपने सम्यक्त्व के चिराग को कैसे बचाकर रखोगे। इस आँधी तूफान में तुम्हारा चिराग जल रहा है ये ही बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। जिन्होंने अपना चिराग जला लिया है उनसे बस यही कहना चाहता हूँ अपने चिराग को संभाल कर रखो। संसार का वैभव एक पाई भी तुम्हारे साथ में नहीं जायेगा, यह सम्यक्त्व का चिराग ही तुम्हारे पाप को, दु:ख क्लेश को नष्ट करने वाला है, तुम्हारी आत्मा में अनंत सुख-शांति देने वाला है। इतना ही नहीं तुम्हें शाश्वत मोक्षफल देने वाला है इसलिये इस हकीकत के चिराग को, नंदा दीप को, इस सम्यग्ज्ञान की ज्योति को, इस सम्यक्त्व के सूर्य को अस्त मत होने देना। यदि कोई व्यक्ति तुम पर प्रहार करे तो कह देना भैया मेरे प्राण ले ले किंतु मेरे सम्यक्त्व के दीपक की ज्योति को मत बुझा। तू मेरे देव-शास्त्र-गुरु के बारे में आधी बात मत कर, मैं सुन नहीं पाऊँगा ये मेरे प्राण हैं। शरीर के प्राण चले गये तो फिर मिल जायेंगे, पर मेरी श्रद्धा के प्राण चले गये तो फिर न जाने कितने काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। न जाने कब ये मनुष्य भव मिलेगा, मैं न जाने कब अपना कल्याण करूँगा।

इसीलिये इस हकीकत के चिराग की सुरक्षा करो, ये ही तुम्हारा मार्गदर्शक है, इसके माध्यम से आगे बढ़ो ऐसी शुभ भावना भाता हूँ।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# अमृत वाहिनी

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

"अमृत वाहिनी" ये दो शब्द हैं। अमृत शब्द का अर्थ आप जानते हैं ऐसा द्रव्य जिसकी उपमा संसार के किसी अन्य द्रव्य से नहीं की जा सकती वह अमृत कहलाता है इसलिये उस अमृत शब्द की उपमा अन्य-अन्य चीजों को दी जाती है। भोजन के लिये कहते हैं आज तो अमृत जैसा स्वादिष्ट भोजन किया अथवा उसके वचन तो अमृत सम मिष्ट झर रहे हैं, कभी ज्ञानामृतं, तो कभी कहते हैं चंद्रमा की शीतल किरणों से मानों अमृत की वर्षा हो रही हो। कोई व्यक्ति कहता है गंधोदक तो अमृत की तरह से है, तो कोई व्यक्ति गंगा जल को अमृत के समान मानता है।

एक व्यक्ति ने पूछा- गंगा जल व यमुना जल इन दोनों में से कौन सा जल अच्छा है? उत्तर मिला यमुना का जल। और आप सब सोच रहे होंगे गंगा का जल। उससे पूछा यमुना के जल को अच्छा क्यों कहा? उसने कहा- आपने जल की बात कही कि कौन सा जल अच्छा है तो जल यमुना का अच्छा है, गंगा का जल, जल नहीं वह तो अमृत है। गंगा के जल को मात्र जल कहना यह तो डिमोशन करना है जैसे भगवान् के अभिषेक को गंधोदक न कहकर भगवान् का पानी कहना। गंधोदक कहने से वह वंदनीय और पूज्यनीय हो जाता है।

अमृत शब्द ऐसा शब्द है जिसे किसी की उपमा नहीं दी जा सकती। 'इष्टोपदेश' की पाँचवी गाथा में आचार्य महाराज ने कहा- स्वर्ग में जो इन्द्रिय जन्य सुख होता है वह दीर्घकाल तक

रहने वाला है, उसमें कोई विघ्न बाधा नहीं आती स्वर्ग में ऐसा सुख है जैसा सिर्फ स्वर्ग में ही है। स्वर्ग जैसा सुख अन्य कहीं नहीं है इसलिये उस सुख की कहीं कोई उपमा नहीं दी जा सकती। ऐसे ही 'अमृत' शब्द ऐसा है जिसे अन्य किसी आहार की उपमा नहीं दी जा सकती। मनुष्य कवल (ग्रास) ग्रहण करता है, पशु चारा आदि ग्रहण करता है, नारकी मिट्टी आदि खाते हैं, भोगभूमि में कल्पवृक्ष से भोजन मिलता है, कुभोगभूमि के लोग वहीं की मिट्टी खाते हैं इनके आहार की उपमा अमृत से नहीं की जा सकती। अमृत का आहार तो सिर्फ और सिर्फ अमर ही करते हैं। जो अमर नहीं वे अमृत का आहार नहीं करते।

'भक्तामर' शब्द इसमें दो शब्द हैं भक्त+अमर। जिन भगवान् की भक्ति करने वाले अमर अर्थात् स्वर्ग के देव हों ऐसा स्त्रोत भक्तामर स्तोत्र है। देवों को अमर क्यों कहते हैं? क्या वे कभी मरते नहीं? उनकी आयु जब पूर्ण होती है, तब वे भी स्वर्ग से च्युत होते हैं उनके मरण को मरण नहीं कहते, कहते हैं वह देव स्वर्ग से च्युत होकर आया है। मरण शब्द का प्रयोग देवों के लिये नहीं किया जाता, इसलिये वे अमर हैं। मनुष्य के लिये कहा जा सकता है महामृत्यु हुयी, निर्वाण हुआ या पशु के लिये कहा जा सकता है मृत्यु हुयी या उसने समाधि पूर्वक मरण किया है। अथवा नारकी के लिये, नारकी नरक से मरण कर निकलकर आता है पर देवों के लिये नहीं कहते कि वह मरण करके आते हैं। देवों के लिये 'च्युत' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसलिये स्वर्ग के देवों को अमर कहा जाता है।

'अमर' कहने का दूसरा कारण और भी है, वह ये कि देव अमृत का आहार करते हैं। जब भी उन्हें इच्छा होती है, उनके

कंठ से अमृत नि:सृत हो जाता है उन्हें तृप्ति मिल जाती है। वे मुख से अन्य कुछ खाते नहीं, पीते नहीं अत: उनका आहार है अमृत। मृत अर्थात् मरा हुआ। देवों के अलावा संसार में जितने भी जीव हैं सब मृत आहार करते हैं। वह आहार सचित्त नहीं अचित्त है। चाहे आहार अनाज हो, मिट्टी हो या फल सब मृत आहार है। देवों के अतिरिक्त अन्य कोई अमृत का आहार नहीं करते। मतलब? मतलब ये कि वे चैतन्यमय आहार करते हैं, तो क्या वे माँसाहार करते हैं? नहीं। अभी आप और हम यहाँ बैठे हैं जीवित हैं या मृत? शरीर जीवित है या मृत? हमारे शरीर से निकलने वाले हार्मोन्स मृत हैं या जीवित? सब जीवित हैं। ऐसे ही देवों के कण्ठ से निकलने वाला अमृत भी जीवित है। इसलिये उनके आहार को अमृत आहार कहा जाता है। मृत आहार नहीं कहा जाता।

अमृत का अर्थ हुआ वह सर्वोत्कृष्ट पदार्थ जिससे तृप्ति मिलती है। संतुष्टि-शांति-सुख मिलता है। जिसे प्राप्त करके कुछ और पाने की इच्छा नहीं होती। उसे अमृत कहते हैं।

उस अमृत की प्राप्ति कैसे हो उस संबंध में चर्चा करेंगे उससे पूर्व दूसरे शब्द को देख लें। दूसरा शब्द है 'वाहिनी'। वाहिनी-वाहन जो वहन करता है, ढो करके ले जाता है। जैसे 'सुरक्षा बल वाहिनी' वह गाड़ी जो पुलिस कर्मियों को लेकर जाती है। बस आदि वाहन को चलाने वाला वाहक या चालक होता है। अमृत वाहिनी माने ऐसा यंत्र, ऐसी मशीन या ऐसी गाड़ी जो हमें अमृत की ओर ले जाये। मृत्यु की ओर नहीं जीवंतता की ओर ले जाये। वैदिक परम्परा में साधना करते समय साधक प्रार्थना करते हैं- असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय।

"हे माँ मुझे अंधकार से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर और मृणमय जीवन से चेतनमय जीवन की ओर, दु:ख से सुख की ओर, ले चलो।" हम सभी चाहते हैं कि अमृत की ओर चलें। वास्तव में सच्चा अमरत्व तो वह कहलाता है जहाँ पर जन्म और मरण होता ही नहीं। देवों को रूढ़ि से कहा जाता है 'अमर' किन्तु वास्तव में यदि अमर हैं तो सिद्ध भगवान् हैं। उनकी कभी मृत्यु नहीं होगी। अरिहंत भगवान् को भी शरीर छोड़ना पड़ेगा। वे चार घातिया कर्मों को नष्ट करके अरिहंत बन गये शेष चार अघातिया कर्मों को नष्ट करते ही वे सिद्धालय में पहुँच जायेंगे।

प्रत्येक भव्य जीव की अंतिम मृत्यु अयोग केवली अवस्था में प्राप्त हुआ निर्वाण है। और अभव्य की कभी अंतिम मृत्यु होती नहीं। दूरानुदूर भव्य भी कब मुक्त होगा कह नहीं सकते। वह भी अति दूर है, उसे वैसा निमित्त मिले या नहीं मिले, नहीं कह सकते।

अमृत वाहिनी के संबंध में कई आचार्यों ने लिखा। परम नैय्यायिक, वाग्मी, कुशल वक्ता, प्रमाणिक आचार्य जो न्याय के धुरंधर आचार्य रहे 1700-1800 वर्ष हो गये इतने वर्षों के इतिहास में न्याय के ऐसे विद्वान् दूसरे नहीं देखे वे आचार्य हैं समन्तभद्र स्वामी जिन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रंथ में अमृत वाहिनी के संबध में लिखा-

**देवाधिदेव चरणं परिचरणं सर्व दु:ख निर्हरणम्।**
**काम दुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥119॥**
**अर्हच्चरण सपर्या-महानुभावं महात्मनामवदत्।**
**भेक: प्रमोदमत्त:, कुसुमेनैकेन राजगृहे॥120॥**

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की पूजा भक्ति अर्चा करने से

एक मेंढक भी 'महानुभाव' अवस्था को प्राप्त हुआ। वह राजगृही नगरी से, पुष्प की पाँखुरी मुख में दबा करके भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में जा रहा था, नगर सम्राट महाराज श्रेणिक बिम्बसार के हाथी के पैर के नीचे दबकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। भावना बलवती थी, भक्ति की भावना थी इसलिये अन्तर्मुहूर्त में वह देव बनकर समवशरण में पहुँच गया। उसके मुकुट में मेंढक का चिह्न देखकर राजा को कौतुक हुआ कि इसके मुकुट में मेढ़क का चिह्न क्यों है तब इन्द्रभूति गौतम गणधर ने सारा वृत्तांत बताया।

आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी कहते हैं- जो भगवान् देवों के भी देव हैं। चार निकाय के देव होते हैं भवनवासी व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक 'तीन निकाय के देव पुण्य हीन माने जाते हैं क्योंकि इन निकायों में सभी का जन्म नियम से मिथ्यात्व के साथ ही होता है। जैसे पंचम काल के मनुष्य भी पुण्यहीन माने जाते हैं, चाहे कोई कितना भी पुण्यात्मा हो जन्म मिथ्यात्व के साथ ही लेता है, बाद में सम्यक्त्व कोई भी प्राप्त कर सकता है, अपनी योग्यता के अनुसार। किंतु चतुर्थ निकाय के वैमानिक देव कुछ सम्यक्त्व के साथ भी जन्म लेते हैं और मिथ्यात्व के साथ भी जन्म लेते हैं। नवमें ग्रैवेयक तक मिथ्यात्व के साथ जन्म ले सकते हैं किन्तु उसके ऊपर बिना सम्यक्त्व के नहीं जा सकते, बिना दिगम्बर अवस्था को स्वीकार किये नहीं जा सकते हैं। 16वें स्वर्ग तक चौथे काल में जा सकते थे श्रावक के व्रतों का पालन करके किंतु आज चाहे श्रावक के व्रतों का पालन किया जाये या श्रमण के महाव्रतों का पालन किया जाये अष्टम स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकते। महानुभाव! समंतभद्र स्वामी जी ने उस कारिका में कहा-

"देवाधिदेव" जो वैमानिक देव हैं वे अपने विमान में स्थित जिनालयों में स्थित जिनबिम्बों की पूजा करते हैं। भवनवासी देव भी अपने भवन में विद्यमान जिनालय में स्थित जिनबिंबों की पूजा करते हैं। व्यंतरों के भी आवास स्थान हैं उन पर भी मंदिर बने हैं, इसी प्रकार प्रत्येक ज्योतिषी देव के विमान में जिनमंदिर हैं, ऐसा एक भी विमान नहीं है जिस विमान में जिनेन्द्र भगवान् का जिनबिंब न हो।

कैलाश पर्वत पर भी अब मानने लगे कि ऐसा कोई स्थान कैलाश पर्वत पर है जो चोटी पर तो नहीं, चोटी से नीचे है। समतल स्थान है वहाँ पर कोई देव शक्ति है, जहाँ जा नहीं सकते किसी देव ने कीलित कर रखी है। जहाँ पंचमकाल का मनुष्य जा नहीं सकता। वहाँ पर इतना जल भरा हुआ है, खाई है यदि वहाँ पर कोई विमान जाएँ तो वहाँ के गुरुत्वाकर्षण के कारण वहीं समा जाता है, लौटकर नहीं आता। वैज्ञानिक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे त्यों-त्यों जैन दर्शन की एक-एक बात को सिद्ध करते चले जायेंगे।

महानुभाव! देवाधिदेव का आशय वह देव भी नहीं जो विमान में रहते हैं, वह भी नहीं जो भवन में रहते हैं, न भवनवासी न ज्योतिष, देवाधिदेव का आशय होता है चार निकाय के देव जिनकी पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं ऐसे वीतरागी देव। जिनके चित्त में संसारी प्राणियों जैसी चेष्टा नहीं राग, द्वेष, मोह नहीं ऐसे 18 दोषों से रहित ही सच्चे देव होते हैं। वे अपनी आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति से सहित हैं सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शन-सुख से सहित ऐसे अरिहंत भगवान् के चरणों की परिचर्या करना।

जैन दर्शन में चरणों की पूजा बतायी है। माथे की पूजा नहीं। जो माथे से की जाती है वह पूजा नहीं सम्मान कहलाता है जो चरणों में की जाती है वह पूजा कहलाती है इसलिये आचार्य समंतभद्र स्वामी ने जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की परिचर्या की बात कही। ये नहीं कहा कि तिलक लगाकर पूजा करो। अन्य सम्प्रदाय में तिलक भी लगाते हैं, मोर पंख भी लगाते हैं, माला भी पहनाते हैं उस पूजा की बात नहीं कही। चरणों की पूजा क्यों? क्योंकि जैन दर्शन में धर्म, चरण को कहा है। सम्यक्त्व को धर्म का मूल कह दिया। "दंसण मूलो धम्मो"। रत्नत्रय को भी धर्म कह दिया। दसधर्म को भी धर्म कहा, दया को धर्म कहा किंतु आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने कहा- चारित्तं खलु धम्मो

"चारित्र ही निश्चय से धर्म है।" यदि आपकी क्रिया चर्या में कुछ भी नहीं है मात्र शब्दों में है तो अभी धर्म नहीं। धर्म तो वह है जो जीवन में प्रकट हो, जिसे धारण किया जाता है वह धर्म होता है। उसी धर्म पर चलकर व्यक्ति मोक्ष तक पहुँचता है। यदि चारित्र रूपी चरण न मिले तो कोई भी व्यक्ति संसार सागर से पार नहीं हो सकता। इसलिये चरण की पूजा की जाती है चरण अर्थात् चारित्र और चरण यानि भगवान् के चरण जिनसे चलके वे मोक्ष महल तक पहुँचे। जो भवन से निकलकर वन में पहुँचे, वन में पहुँचे तो वे भगवान् बन गये, फिर कर्मों को छोड़कर सिद्धालय में पहुँचकर सिद्धात्मा बन गये।

चारित्र के बारे में आप पढ़ते हैं-

**"जे एक मुख चारित्र भासक त्रिजग माहिं प्रधान है"**

इसके अर्थ के विषय में अनेकों लोगों से चर्चा हुयी-

"भगवान् समवशरण में जब रहते हैं, तब मुख तो एक होता है पर चारों दिशाओं में दिखाई देता है और वे तीन लोक में प्रधान हैं" ऐसा अर्थ किया, शायद आप लोग भी ऐसा ही अर्थ जानते हैं। किन्तु इसका अर्थ ये नहीं है। इसका अर्थ है- "जिनके उपदेश में एक मुख्य चारित्र की विशेषता रहती है अन्य सभी धर्म उसके पीछे-पीछे रहते हैं" इसलिये द्वादशांग का पहला अंग आचारांग है। "पहलो आचारांग बखानो।"

पहला धर्म आचरण, संस्कार, सदाचार, सम्यक्चारित्र, संयम ये सब इसी में आ जाते हैं इसलिये मुख्य रूप से धर्म तो चारित्र ही है। इसलिये समंतभद्र स्वामी ने कहा 'देवाधिदेव चरणं परिचरणं' जो अरिहंत भगवान् के चरणों की सेवा करता है, उनके चरणों को कम से कम स्पर्श तो करता है। भारतीय संस्कृति चरणस्पर्श करने की है। पाश्चात्य संस्कृति में या तो घुटने छू लिये जाते हैं या हाथ उठाकर सेल्यूट कर लिया जाता है। दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करना, उन हाथों को बढ़ाकर चरण स्पर्श करना ये भारतीय संस्कृति है। श्रावक भी रात्रि में वैय्यावृत्ति में आकर चरणों को दबाते हैं और कहते हैं महाराज! ये आपके चरण ही हैं जो हमें आचरण की प्रेरणा देने वाले हैं, इनका सहारा लेकर हम भी मोक्षमार्गी बन जायेंगे। जो श्रद्धा सहित आते हैं वे सर्वप्रथम चरणों को छूते हैं उनसे निकलने वाली ऊर्जा को ग्रहण करते हैं।

आचार्य महोदय कह रहे हैं कि चरणों की परिचर्या क्यों करनी चाहिये? 'क्यों' 'क्या' शब्द लगा दिया आज की युवा पीढ़ी ने और बनिया बुद्धि वाले महानुभावों ने। हम क्या फालतू हैं, हम भगवान् के चरणों की परिचर्या क्यों करें इससे क्या

मिलेगा। आज का छोटा बालक भी कहता है, मंदिर क्यों जाऊँ या अमुक कार्य क्यों करूँ, उसे क्यों का उत्तर देने के लिये आचार्य समंतभद्र स्वामी ने पहले से सोच लिया था, अब पंचमकाल में धर्म का निर्वाह अधिकांशतः वणिक् बुद्धि वाले करेंगे। अब क्षत्रिय बुद्धि वाले पीछे हो गये, द्विज बुद्धि वाले भी कम हो गये, अब तो वणिक् बुद्धि वाले आयेंगे इसलिये पहले से उत्तर दे दो, इसलिये उन्होंने श्लोक की अगली लाइन में उत्तर दे दिया-

"सर्व दुःख निर्हरणम्" यदि सभी दुःखों का नाश करना चाहते हो तो देवाधिदेव अरिहंत भगवान् के चरणों की परिचर्या करो। ऐसा कोई भी दुःख नहीं है संसार में जो उनके चरणों की पूजा करने से नष्ट न हो। ऐसा कोई भी कर्म नहीं है जो उनके चरणों की पूजन से क्षय न हो, निधत्ति और निकाचित जैसे कर्म भी जो तपस्या से क्षय नहीं होते वे भगवान् के चरणों की भक्ति से नष्ट हो जाते हैं। आचार्य वीरसेन स्वामी जी ने 'धवला जी' की प्रथम पुस्तक में लिखा 'शुभोपयोग' इससे भी कर्मों का क्षय होता है। भक्ति में लगाये गये शुभोपयोग से भी कर्मों का क्षय होता है यदि शुभोपयोग से कर्मों का क्षय नहीं मानेंगे तो कभी जीवन में कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकेगा। क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति कैसे होगी? क्योंकि प्रारंभिक गुणस्थान में शुद्धोपयोग तो है नहीं, शुभोपयोग से भी कर्मों का क्षय होता है।

भगवान् के चरणों की परिचर्या करने से सर्व दुःखों का नाश होता है इसलिये भगवान् की पूजा भक्ति करने के लिये तीन गति के जीव आते हैं। तीन गति के जीव प्रत्यक्ष में भगवान् की पूजा कर सकते हैं मात्र एक गति के जीव नहीं कर सकते। जो

आज वर्तमान में प्रत्यक्षरूप से भगवान् की पूजा भक्ति नहीं करते हैं तो समझ लेना चाहिये शायद वे तीन गति को छोड़कर चौथी गति की तैयारी कर रहे हैं। देव प्रत्यक्ष रूप से भगवान् की पूजन कर सकते हैं करते हैं, मनुष्य भी कर सकते हैं करते हैं, तिर्यंच भी प्रत्यक्ष में भगवान् के दर्शन भक्ति कर सकते हैं करते हैं किन्तु नारकी कभी प्रत्यक्ष में दर्शन नहीं करते। जो जैनकुल में जन्म लेकर जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन नहीं करते, आप ही बताओ उन्हें क्या कहें? कहाँ की तैयारी कर रहें।

भगवान् के दर्शन करने से क्या होता है तो आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने लिखा-

**श्री मुखालोकना देव, श्री मुखालोकनं भवेत्।**
**आलोकन-विहीनस्य, तत् सुखावाप्तयः कुतः।।**

जो तीन लोक के नाथ 'अरिहंतप्रभु' के दर्शन करता है वह नियम से आज नहीं तो कल मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करेगा। जो श्री जी के दर्शन नहीं करता उसे जीवन में कभी मुक्ति श्री नहीं मिलेगी न संसार की लक्ष्मी मिलेगी। भगवान् के चरणों की भक्ति करके देखो तुम्हारे सभी मनोरथों की पूर्ति हो जायेगी। ऐसा कोई दुःख नहीं जो नष्ट न हो सके। ऐसी कोई लकड़ी नहीं जिस लकड़ी को अग्नि न जला सके, तो ऐसा कोई पाप कर्म नहीं जो पाप कर्म भगवान् की भक्ति से नष्ट न हो सके।

इसलिये जो देव हैं वे समवशरण में जाते हैं भक्ति करते हैं, दिव्यध्वनि भी सुनते हैं। किन्तु दिव्यध्वनि 24 घंटे नहीं खिरती मात्र सवा दो दो घड़ी खिरती है लगभग 9 घंटे खिरती है। शेष समय जो बचा उस 15 घंटे में वे देव-मनुष्य व तिर्यंच भगवान्

की भक्ति करते हैं। भक्ति के लिये दुगुने से भी ज्यादा समय और स्वाध्याय में 1/4 समय। भक्ति को देव भी महत्त्व देते हैं। आप कहेंगे कैसी बात कर रहे हैं महाराज! हाँ सही बात कह रहे हैं इसीलिये देव जब-जब भी आष्टाह्निक पर्व आता है तो नंदीश्वर द्वीप में पूजन करने से चूकते नहीं चारों संध्याकालों में अखण्ड रूप से भक्ति पूजा चलती रहती है। इतना ही नहीं मध्यलोक में जितने भी कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय हैं उनकी पूजा भक्ति करने के लिये भी आते हैं, उनके विमानों में स्थित जिनबिंबों की पूजा नियम से करते हैं। वे तत्त्वचर्चा करें या न करें किन्तु पूजा भक्ति तो नियम से करते ही करते हैं।

इस मध्यलोक के जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र एवं ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान में वैमानिक देव नहीं आते क्योंकि ये हीन काल चल रहा है। वे भले ही नहीं आयें किंतु जो सम्यग्दृष्टि भवनवासी या व्यंतर देव हैं वे इन कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयों की पूजा भक्ति करने आते हैं। प्रत्येक क्षेत्र का कोई न कोई क्षेत्रपाल होता है और जो आप अतिशय देखते हैं कि भगवान् की मूर्ति का अपने आप अभिषेक हो रहा है आज भी देवों द्वारा ऐसे अतिशय देखे जाते हैं। वे देव भगवान् की भक्ति करके भगवान् के भक्तों का भला करते हैं।

समंतभद्र स्वामी को ज्वालामालिनी ने स्वप्न में कह दिया चिंता न करो यदि राजा ने शिवपिंडी को नमस्कार करने के लिये कह दिया तो जिनशासन की महती प्रभावना होगी। अकलंक स्वामी ने वाद-विवाद किया तो चक्रेश्वरी प्रगट हो गयीं। ऐसे जिनशासन की प्रभावना हेतु देवों ने आकर अतिशय महिमा दिखलाकर धर्म की प्रभावना की। आचार्य कुंदकुंद स्वामी जी ने भी गिरनार पर्वत

पर आदि दिगम्बरा कहलवाकर सत्य की विजय करायी। जो व्यक्ति अपने परिवार वालों के प्रति भी अच्छा व्यवहार करते हैं तो उसके परिवार वाले उसे सरप्राइज देते हैं। सरप्राइज अर्थात् जिससे उन्हें आश्चर्य हो। ऐसे ही देव भी तुम्हें सरप्राइज दे सकते हैं यदि तुम भगवान् की पूजा भक्ति करोगे तो। मनुष्य छोटे-छोटे सरप्राइज देते हैं देव बड़े-बड़े सरप्राइज देते हैं।

महानुभाव! जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति करने से सभी प्रकार के दुःखों का नाश हो जाता है। भक्ति कैसे करना है? उमास्वामी श्रावकाचार में भक्ति पूजा 21 प्रकार से बताई। वसुनंदी आचार्य, अमितगति आचार्य, आ.श्री जिनसेन स्वामी, आ. श्री कार्तिकेय, श्री सोमदेवाचार्य आदि सभी ने पूजा भक्ति की व्याख्या की। आपने भगवान् के जिनालय की देहरी को छू भी लिया, ये भी आपकी पूजा है, आपने भगवान् की जय बोल दी 'जय जिनेन्द्र' यह भी पूजा है, यदि मंदिर में आपने घंटा दान दे दिया ये भी भगवान् की पूजा है, यदि मंदिर में वंदन, तोरणद्वार, भामण्डल, छत्रादि लगाये तो यह भी पूजा है, वेदी और शिखर बनवाये, जिनालय बनवाये ये भी पूजा है यहाँ तक कि भगवान् के अभिषेक की अंगोछी भी दे दी तो यह भी पूजा हो गयी।

महानुभाव! अष्टम बलभद्र रामचंद्र जी जब वन में गये वहाँ रहकर उन्होंने जंगल में फल आदि का सेवन किया, झरनों से शुद्ध पानी छानकर पिया किन्तु भोजन करने के पहले इष्ट देवता की उपासना अवश्य की। एक दिन भी अपने प्रभु परमात्मा की भक्ति किये बिना, उन्होंने जल का एक घूँट भी कंठ के नीचे नहीं उतारा। इतना ही नहीं शास्त्रों में लिखा है जहाँ भी उन्हें जिनालय मिलते थे उनके दर्शन करते, नहीं तो नित्य ही बालू या

मिट्टी की मूर्ति बनाकर के तदाकार या अतदाकार स्थापना करते, उनकी पूजा भक्ति करते, तब वे भोजन करते। इतना ही नहीं बाद में यक्ष ने उनका बहुत सम्मान किया बहुत वैभव दिया, तब रामचन्द्र जी ने जो वैभव यक्ष ने दिया था उन सबसे रामगिरि पर जिनेन्द्र भगवान् के मंदिर बनवाये थे।

महानुभाव! भरत चक्रवर्ती ने अपने वैभव को जो पूर्व पुण्य से मिला था, सोचा यदि यह सम्पत्ति छोड़कर जाता हूँ तो पाप का बंध होगा, मैं धन कैसे लुटाऊँ किसको दूँ- कुपात्रों को दूँगा तो मेरा पाप बढ़ेगा, अपात्रों को दूँगा तो मेरा भव भ्रमण बढ़ेगा, सुपात्रों को कहाँ तक दूँ, मुनि महाराज धन लेते नहीं वे यथाजात दिगम्बर हैं। मात्र संयम के उपकरण ग्रहण करते हैं अब क्या करूँ, किसको दूँ। त्यागीव्रती हैं नहीं कैसे परीक्षा ली जाये। इसके लिये उन्होंने आने वाले मार्ग में अंकुर धान्य डलवा दिया, कुछ लोग रोंदते हुये उसके ऊपर से आ गये चक्रवर्ती ने उनका तो सम्मान नहीं किया किंतु जो शेष लोग घूमकर आये उनसे पूछा- आप घूमकर क्यों आये तो उन्होंने कहा- सामने घास है तृण में भी जीव है और हम द्विज हैं, हम अहिंसक हैं इस पर पैर नहीं रख सकते। तब भरत चक्रवर्ती ने तीन रत्न का यज्ञोपवीत उन्हें धारण कराया और कहा आदि प्रभु ने तीन धर्म सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का उपदेश दिया किन्तु गृहस्थों का ये ही (यज्ञोपवीत) रत्नत्रय का द्रव्य चिह्न है। मुनि महाराज का द्रव्य चिह्न है पीछी, कमण्डल। पुनः उन्हें खूब दान दिया। किन्तु उन्होंने भी कहा हमारी मर्यादा है परिग्रह परिमाण है, हम ज्यादा नहीं ले सकते। भरत चक्रवर्ती ने सोचा अब क्या करूँ इस धन का, तब उन्होंने कैलाश पर्वत पर जाकर के 72 जिनालय बनवाये, वहाँ रत्नों की

मूर्ति स्थापित करायी। सोचा मेरे धन का सदुपयोग हो जाये। मेरे जाते ही मेरा धन से कोई वास्ता नहीं, मैंने कुछ कमाने में, रक्षा करने में पाप कमाया। उस पाप को धोने के लिये कुछ न कुछ पुण्य तो करूँ। ऐसा पुण्य किया कि उसी भव से मोक्ष चले गये।

महानुभाव! भक्ति करने के लिये चाहे रामचंद्र जी हों, चाहे भरत जी हों चाहे और कोई भी महापुरुष रहे हों जिसने भी भक्ति की यहाँ तक कि रावण ने भी भक्ति की तो उसने भी बहुरूपिणी विद्या को सिद्ध किया। अपने महल के जिनालय में शांतिनाथ भगवान् की पूजा भक्ति करता था। विभीषण के महल में पद्मप्रभ भगवान् का चैत्यालय था, कुंभकर्ण के महल में भी चैत्यालय था। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के यहाँ चैत्यालय हुआ करते थे आज भी आप जानते हैं 'धर्मस्थल के वीरेन्द्र हेगड़े जी' वहाँ भी चैत्यालय है।

भगवान् की पूजा भक्ति किसी भी प्रकार से करो, जो भक्ति में लग गया चाहे सम्राट हो या भिक्षु, भगवान् के साथ जो लग गया तो भगवान् बन गया, उसे भगवान् बनने से कोई रोक न सका। आप सभी लोग अपने मन का काम कराते हैं मन का मकान बनाया, दुकान बनायी, मन की रसोई बनाते हैं। अपने हाथ से अपनी द्रव्य बनाते हैं पूजा के लिए या आहार में बने बनाये चौके में जाकर आहार देने में वह आनंद नहीं आता जो आनंद अपने हाथ से भले ही पानी गर्म किया हो, भले ही एक सब्जी बनायी हो अपने हाथ का कुछ भी खिलाकर जो आनंद आता है उसकी बात ही अलग होती है, भक्ति का रस उसमें आ जाता है। जब सब कुछ मन का करते हो तो अपने हृदय में अपनी श्रद्धा के, अपने मन के भगवान् विराजमान करो और

प्रार्थना करो हे भगवन्! जैसे आप अपनी शक्ति प्रगट कर परमात्मा बने ऐसे ही मैं भी बन सकूँ।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं- "कामदुहिकामदाहिनी" भगवान् की भक्ति कामधेनु गाय की तरह से सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। जो शुद्ध मन से भगवान् की भक्ति करता है उसके सभी कार्य 100% बनते हैं। किसी स्वार्थ बुद्धि से नहीं नि:स्वार्थ भावना से भक्ति करें तो गारण्टी है आपके बिगड़े काम बन जायेंगे। किसी सेठ के आगे हाथ नहीं जोड़ना, भीख सी नहीं माँगना जो कुछ माँगना तीन लोक के नाथ से माँगना।

एक व्यक्ति रात्रि में करवटें बदल रहा था, बैचेनी हो रही थी। कमरे का वातावरण भी ठीक-ठाक ए.सी. ऑन है फिर भी उसे गर्मी लग रही है। वह उठकर कमरे में टहलने लगा, उसका मन नहीं लगा नीचे उतरा, अपना घोड़ा उठाया और अकेले ही जंगल में चला गया। जाता जा रहा है, सामने पहाड़ था, घोड़ा पहाड़ पर चढ़ गया देखा छोटा सा मंदिर बना है। एक दीपक जल रहा है। वह व्यक्ति मंदिर की ओर गया और जाली से ही भगवान् के दर्शन करने लगा। दर्शन करते हुये उसने देखा, कोई एक भक्त वहाँ भगवान् की भक्ति कर रहा है। वह भगवान् से कह रहा है- भगवन्! प्रात:काल तक आपने पैसे नहीं भिजवाये तो मेरा इकलौता बेटा मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा मेरे पास एक पंजी भी नहीं है। अब आप देख लो उसे जीवित रखना है कि मारना है। मैं तो आपके पास आ गया, मैं और कहीं जाऊँगा भी नहीं आप ही बचाने वाले हो आप ही देखने वाले हो। मैं अब जा रहा हूँ बस आपसे कहने आया था। नीचे जाकर देखता हूँ बेटा यदि मर गया होगा तो अंतिम संस्कार कर दूँगा, जीवित

होगा तो डॉक्टर के पास ले जाऊँगा। यह कहकर जैसे ही पीछे मुड़ा तो देखा सामने सेठ खड़ा है।

सेठ ने अपनी जेब में हाथ डाला और उसे धन दिया, उस व्यक्ति ने उतना धन लिया जितना इलाज के लिये उसने भगवान् से माँगा था। सेठ ने कहा–और ज्यादा आवश्यकता पड़े तो मेरा पता लिख लो, मैं तुम्हारे बेटे को बचाने के लिये और भी धन दे दूँगा। उसने कहा–मुझे आवश्यकता नहीं, मेरे पास पता है। उस सेठ ने कहा– मैं आज तुमसे पहली बार मिला तुम्हें मेरा पता कैसे पता। वह बोला मुझे तुम्हारे पते की आवश्यकता नहीं। सेठ को खराब लगा, मैंने तेरी मदद की और तू कहता है आवश्यकता नहीं। उसने कहा बाबू जी क्षमा करना जिसने तुम्हें रात के दो बजे भेजा है देने के लिये उसका पता मेरे पास है। मुझे आवश्यकता पड़ती है तो मैं उसी के पास आता हूँ।

मेरे नाथ तो तीन लोक के नाथ हैं। जो तुमको भी देते हैं, मुझको भी देते हैं। मेरे भगवान् ने मेरी भक्ति सुनी, मैं उससे कहता हूँ वह किसी न किसी को भेज देता है। महानुभाव! भक्ति ये कहलाती है कामधेनु गाय की तरह से सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है। भगवान् हमारी सर्व भावनाओं को पूर्ण करते हैं। सच्चे मन से हमने जो भी भावना भायी वह कभी अपूर्ण नहीं रहती है।

आप से यही कहना चाहते हैं सच्चे मन से, सच्चे हृदय से भगवान् के चरणों में लगो तो, आपकी सभी मनोभावना पूर्ण हो जायेंगी। पर सच्ची भक्ति होनी चाहिये। 10 पैसे लेकर कोहिनूर हीरा लेने पहुँच जायेगा तो कोई क्या देगा? 10 पैसे में तो एक काँच का टुकड़ा ही मिलेगा। जितनी बड़ी डिमाँड है उतनी बड़ी

भक्ति करो। तुम एक दिन की भक्ति करके चक्रवर्ती का पद माँगते हो। कुछ मत माँगो हमारी सच्ची भक्ति होगी तो सभी अनुकूल वस्तु हमें मिलती चली जायेंगी।

भक्ति ही जीवन में 'कामदाहिनी' सभी विषयविकारों को नष्ट करने वाली है। अर्हत्भक्ति करते हुये सोलहकारण भावना की पूजन में आप पढ़ते हैं **'अर्हद्भक्ति सदामन आने, सो जन विषय कषाय न जाने"** जो अर्हन्त प्रभु की भक्ति करते हैं उसके चित्त में विषय कषाय ठहरते नहीं है जैसे सूर्य के उदय होने पर अंधकार ठहरता नहीं है। जो विषय-कषाय से भरे पड़े हैं वे भगवान् के दरबार तक आ नहीं पाते। नीतिकार कहते हैं-

**सौ कार्यों को छोड़कर के स्नान करना चाहिये।**
**हजार कार्यों को छोड़कर के समय पर भोजन करना चाहिये।**
**1 लाख कार्यों को छोड़कर के नृप की आज्ञा का पालन करना चाहिये।**
**1 करोड़ कार्यों को छोड़कर के भगवान् का पूजन अभिषेक करना चाहिये।**

भगवान् की भक्ति से आपके करोड़ों बिगड़ने वाले काज भी बन जायेंगे। किंतु करोड़ों कार्य करने से भगवान् की पूजा भक्ति नहीं होती। इसलिये कहा भगवान् की भक्ति रूपी गाय के माध्यम से सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला दुग्ध प्राप्त होता है। सभी विषयाभिलाषाओं को, पाप-वासनाओं को नष्ट करने वाली यह जिनभक्ति है। इसलिये नित्य ही आदर पूर्वक भगवान् के चरणों की परिचर्या करें। ऐसा आचार्य समंतभद्र स्वामी जी ने आदेश (जजमेंट) दे दिया।

आचार्य महोदय ही आदेश देने के अधिकारी हैं। आजकल

प्रत्येक व्यक्ति मजिस्ट्रेट बनना चाहता है किन्तु जिसका जो काम है वही करना चाहिये, अपने मनोनुकूल नहीं। घर में जो अधिकार मुखिया को है वह छोटे को नहीं। पहले राजा की सभाओं में दण्डनायक होते थे, दण्ड देने का काम राजा नहीं करता था, दण्डनायक देता था। राजा भले ही बड़ा है, दण्ड नायक उसके अधीन है फिर भी दण्ड वही देता था। आज भी कोर्ट में न्याय सुनाने का अधिकार ए.डी.जे., डिस्ट्रिक्ट जज, हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट के जज को है, किसी वकील या सामान्य व्यक्ति को नहीं। सड़क पर किसी ने खुले आम गोली चलाकर हत्या कर दी तो अधिकार किसी नागरिक को नहीं वरन् भारतीय सरकार दण्ड संहिता का एक प्रोसीजर है उसी के अनुरूप दण्ड दिया जायेगा। चाहे किसी ने गोली राजीव गांधी को ही क्यों न मारी हो फिर भी उस भीड़ ने उस गोली चलाने वाले को दण्ड नहीं दिया, उस भीड़ में जज भी आ जाये किन्तु उस समय दण्ड नहीं दे सकता, राज्यपाल राष्ट्रपति भी दण्ड नहीं दे सकता किंतु आज विडम्बना है अपनी जैन समाज की, किसी से कोई गलती होती है तो चार लड़के उन्मादी कहीं भी किसी को दंड देने पहुँच जाते हैं यह संस्कृति के खिलाफ है।

जैन दर्शन के अनुसार हमारे बड़े आचार्य हैं। उनके चरणों में बैठकर निर्णय लें, भारतवर्षीय संस्थायें हैं उनके समक्ष निर्णय लें। आज इस व्हाट्सएप से जिनशासन की अप्रभावना को रोकें। महानुभाव! यहाँ आचार्य भगवन् आदेश दे रहे हैं आप सभी भगवान् की भक्ति करो, भक्ति न करोगे तो भगवान् न बन सकोगे।

यही जिनेन्द्र भक्ति जीवन में 'अमृत वाहिनी' है। जो जिनभक्ति करता है वह नियम से स्वर्ग की अवस्था को प्राप्त करता है वहाँ

पर अमृत का पान करता है, उसके कंठ से अमृत झरता है। महानुभाव! आप भी उस जिनभक्ति रूपी अमृत वाहिनी में सवार हो अपने लक्ष्य को प्राप्त करें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# बंधन को वंदन

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

जिनशासन में आज का दिन अत्यंत महत्त्वपूर्ण दिन है। आज एक, दो नहीं चार-चार पर्व हैं। पहला पर्व है 'जन्म जयंती पर्व' जिनशासन में जो अष्टम बलभद्र श्री पद्म जिन्हें रामचंद्र जी के नाम से जानते हैं उन राम-सीता के पुत्र अनंगलवण व मदनांकुश की आज जन्म जयंती है।

**राम चन्द्र के सुत द्वय वीर, लाड नरिंद आदि गुणधीर।** वे मोक्षगामी जीव, उनके चरणों में प्रणाम करते हैं। उनका जन्म श्रावण सुदी पूर्णिमा दिन मंगलवार को हुआ, वे महापराक्रमी रहे उन्होंने युद्ध में अपने पिता व चाचा को भी हराया।

दूसरा पर्व है- 'यज्ञोपवीत पर्व' मुनिमहाराज साधना करने के लिये पिच्छी व कमण्डल को स्वीकार करते हैं पिच्छी संयम का उपकरण है जिससे जीव रक्षा की जाती है और कमण्डल शौच का उपकरण है शुद्धि के लिये। जिसमें आने का द्वार बड़ा, जाने का छोटा जो कि भूमण्डल का अर्थशास्त्र अपने में छिपाये हुए है। मुनिमहाराज पिच्छी कमण्डल के बिना लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते इसलिये छद्मस्थ मुनिराजों को पिच्छी कमण्डल आवश्यक नहीं अनिवार्य होता है। बिना पिच्छी-कमण्डल के वे सात कदम से आगे नहीं चल सकते। पिच्छी-कमण्डल मुनिराज का बाह्य चिह्न है, अंतरंग में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र है। किंतु श्रावक का लक्षण क्या है? श्रावक का बाह्य चिह्न क्या है इसलिये आचार्य भगवन् श्री जिनसेन स्वामी जी ने, सोमदेव आचार्यवर ने, आचार्य नेमिचंद्र, आचार्य अमितगति, आचार्य वसुनंदी,

आचार्य जयसेन, आचार्य यतिवृषभ इत्यादि आचार्यों ने यज्ञोपवीत के बारे में कहा "यज्ञोपवीत श्रावक का धर्म का द्रव्य चिह्न है।"

जो श्रावक देव शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धावान् होता है, भक्तिवान् होता है, आत्मकल्याण का इच्छुक होता है, सदाचारी होता है, जिसके अंदर में एकदेश सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है ऐसा श्रावक यज्ञोपवीत को जरूर धारण करता है। आपने भगवान् की प्राचीन मूर्तियाँ देखी होंगी चाहे देवगढ़ में, आहार जी में, सिरोंज जी में, अन्य-अन्य स्थानों पर जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति के साथ इन्द्रों की मूर्तियाँ भी होती हैं, इन्द्रों के गले में द्रव्य अंतरंग धर्म का प्रतीक यज्ञोपवीत होता है रत्नों से बना हुआ। क्षत्रिय भी यज्ञोपवीत पहनते हैं किन्तु सोने का यज्ञोपवीत पहनने की परम्परा है। ब्राह्मण भी यज्ञोपवीत पहनते हैं चाँदी का, राजा महाराजा भी यज्ञोपवीत पहनते हैं जो सदाचारी होते हैं, श्रेष्ठी गण वणिक् भी जैन धर्म का पालन करते हैं वे भी यज्ञोपवीत पहनते हैं किन्तु वे कच्चे सूत के धागे का पहनते हैं।

महानुभाव! यज्ञोपवीत का संस्कार भगवान् ऋषभदेव ने अपने करकमलों के द्वारा अपने पुत्र भरत का किया था। ऐसा जिनसेन महाराज ने आदिपुराण में लिखा है। वर्तमान काल में भी श्रावकों ने यज्ञोपवीत को धारण किया, जब भी यथाजात दिगम्बर मुनि बने तब उन्होंने यज्ञोपवीत का त्याग किया। आचार्य शांतिसागर जी महाराज गृहस्थावस्था में रहे, चाहे आचार्य देशभूषण जी महाराज गृहस्थावस्था में रहे, चाहे विमल सागर जी महाराज जिन्होंने आचार्य शान्ति सागर जी महाराज द्वारा दिया गया यज्ञोपवीत धारणा किया और-और आचार्य महाराज रहे सभी ने गृहस्थ जीवन में अर्थात् ब्रह्मचारी अवस्था तक दीक्षा के पहले-पहले तक यज्ञोपवीत को

धारण किया था। वह यज्ञोपवीत आज भी श्रावकों को धारण करना चाहिये। शास्त्रों में लिखा है कि बिना यज्ञोपवीत धारण किये भगवान् के पूजन अभिषेक का अधिकार नहीं। मुनिमहाराज को आहारदान देने का अधिकार नहीं, संध्यावंदन आरती आदि करने का अधिकार नहीं।

महानुभाव! एक बार एक सज्जन आचार्य वीरसागर जी महाराज के दर्शनार्थ आये और उन्होंने यज्ञोपवीत के विषय में चर्चा करना प्रारंभ किया। उन्होंने कहा "यज्ञोपवीत धारण करना जैन संस्कृति का अंग न होकर ब्राह्मण संस्कृति का चिह्न है जिसको भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना कर ब्राह्मणों को पहनाया था।" आचार्य श्री ने उत्तर दिया- ब्राह्मण वर्ण की स्थापना करने से पूर्व भरत चक्रवर्ती के यज्ञोपवीत था कि नहीं? पुरुदेव चम्पू आदि पुराण ग्रंथों के अनुसार आदिनाथ प्रभु ने स्वयं भरत बाहुबली का यज्ञोपवीत संस्कार किया है।

भरत चक्रवर्ती यज्ञोपवीत धारी थे। दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करते समय यज्ञोपवीत छोड़ने का कथन आता है, तो क्या ब्राह्मण ही दीक्षा लेते थे और क्षत्रिय वैश्य दीक्षा नहीं लेते थे? 108 गर्भाधानादि क्रियाओं में यज्ञोपवीत संस्कार आता है। वह संस्कार क्या केवल ब्राह्मणों के लिये है? क्षत्रिय-वैश्य के लिये नहीं? उन्होंने कहा यज्ञोपवीत ब्राह्मणों का चिह्न नहीं अपितु जैन संस्कृति का चिह्न है। उत्तम कुल जाति का द्योतक है धार्मिक अनुष्ठानों में इसका कथन आता है। इसके बिना श्रावक दान एवं पूजा का अधिकारी नहीं होता।

जैन धर्म में यज्ञोपवीत रत्नत्रय का प्रतीक है। महापुराण में लिखा है-

**यज्ञोपवीतमस्य स्याद् द्रव्यस्त्रि गुणात्मकं।**
**सूत्र मौपाक्षिकं तु स्याद्भावरूढै स्त्रिभिर्गुणैः।।**

तीन तार का जो यज्ञोपवीत है वह श्रावक का द्रव्य सूत्र है और चारित्ररूपी गुणों से निर्मित भाव सूत्र है। अतः यह सूत्र रत्नत्रय का सूचक है। 'व्रत चिह्नं दधत्सूत्रं' सूत्र व्रत का चिह्न है।

हरिवंश पुराण में भी आया है-"जब बालक आठ वर्ष का हो जाता है तब उसके वक्षस्थल का चिह्न, सात तार का गूंथा हुआ सूत का यज्ञोपवीत है। यह यज्ञोपवीत सप्त परम स्थान का सूचक है।

महापुराण के 40वें पर्व में कई श्लोकों में यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है-"जो अपनी योग्यतानुसार असि, मसि, कृषि और वाणिज्य के द्वारा अपनी आजीविका करते हैं ऐसे सम्यग्दृष्टि द्विजों को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

महानुभाव! हमारे आचार्यों ने युक्तिपूर्वक यज्ञोपवीत का कथन किया और उसके बनाने की विधि बताई कि यह तीन लड़ी का होता है एक लड़ी में 9 धागे होते हैं अतः इसमें 27 तत्त्वों का कथन करने वाले (सातत्त्व+नौपदार्थ+पाँच अस्तिकाय+ छः द्रव्य=27) सत्ताईस धागे हैं।

यज्ञोपवीत सूतक-पातक में बदल लिये जाते हैं किंतु वर्ष में एक दिन है यज्ञोपवीत को बदलने का, वह है 'श्रावण सुदी पूर्णमासी।' आज के दिन जो व्यक्ति नये यज्ञोपवीत धारण करना चाहते हैं, श्री जी के गंधोदक में शुद्ध करके धारण कर सकते हैं और जो पहले से धारण किये हुये हैं उन्हें आज अपना धारण किया यज्ञोपवीत बदल लेना चाहिये। सभी श्रावक जिनकी उम्र

आठ वर्ष से अधिक हो गयी है उन सभी को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। किंतु अपनी जैन परम्परा को, मूलसंस्कारों को हम विस्मृत करते चले जा रहे हैं। आज भी कर्नाटक महाराष्ट्र में ये संस्कार बड़े धूम-धाम से किये जाते हैं। आप कहते हैं मुनिराज के पास पिच्छी कमण्डल दिखाई नहीं देगा तो हम उन्हें नमोस्तु नहीं करेंगे, ये मुनिराज नहीं हैं, तो भैया! तुम्हें श्रावक कौन कहेगा? तुम्हारे पास श्रावक का चिह्न क्या है? यह यज्ञोपवीत जैनत्व का प्रतीक है, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के भक्त का प्रतीक है यह धारण करना चाहिये।

तृतीय पर्व है-'भगवान् श्रेयांसनाथ स्वामी का निर्वाण कल्याणक'। जिनशासन के ग्यारहवें तीर्थंकर जिन्होंने सम्मेदशिखर से मोक्ष को प्राप्त किया। विष्णुदत्त व विष्णुश्री के पुत्र श्रेयांसनाथ भगवान् जिनकी **84 लाख वर्ष** की आयु जिनका **21 लाख वर्ष** तक तपस्या काल रहा, **2 वर्ष** का छद्मस्थ काल रहा उन्होंने एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण की पुनः केवलज्ञान को प्राप्त कर आज ही के दिन मोक्ष को प्राप्त किया। चौबीस तीर्थंकर के कल्याणक भी पर्व होते हैं इन्हें भी मनाना चाहिये।

चतुर्थ पर्व है रक्षाबंधन पर्व'। जिसकी कथा इस प्रकार है-

अवन्ति देश भारतवर्ष में चतुर्थकाल से ही प्रसिद्धी को प्राप्त रहा है। मगधदेश, कौशल देश, कुरुजांगल देश, सुरम्य देश, सौराष्ट्र देश, कलिंग देश, अंग देश, बंग देश आदि भगवान् वृषभनाथ के समय से ही प्रसिद्धी को प्राप्त रहे। अवन्ति देश में उज्जैनी नामक नगरी थी। जिस समय का यह व्याख्यान है उस समय भगवान् मुनिसुव्रतनाथ जी का शासनकाल चल रहा था। उस समय वहाँ का राजा श्री वर्मा था। जिसके चार मंत्री थे

बलि, नमुचि, प्रहलाद और बृहस्पति। चारों मंत्री राजा की आज्ञानुसार राज्य का संचालन करते थे। महाराज श्री वर्मा को सदैव एक विकल्प रहता था कि उनके चारों मंत्री मिथ्यादृष्टि थे, जैनधर्म के विरोधी थे, और महाराज श्रीवर्मा जैन धर्म का कट्टरता से पालन करने वाले थे।

एक दिन पुण्य के संयोग से अवन्तिदेश की उस उज्जैनी नगरी के समीप अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का संघ आया, नगर के सभी आबाल वृद्ध आनंद से झूमने लगे ऐसा लगा जैसे स्वर्ग चलकर आ गया हो या साक्षात् मोक्षमार्ग हमारी नगरी में चलकर आ रहा हो। राजा श्रीवर्मा ने घोषणा करायी कि प्रातःकाल सभी नगर निवासी मुनिराज की वंदना करने राजपरिवार के साथ जायेंगे। यह खबर जब चारों मंत्रियों ने सुनी तो वे बड़ी मुश्किल में पड़ गये, अरे! दिगम्बर साधु के दर्शन करने जायेंगे वे तो अकिंचन्य हैं, नग्न हैं उनके पास क्या है? उनका दर्शन करना अशुभ होता है। वे चारो राजा के पास पहुँचे, कहने लगे महाराज! आपने ये क्या घोषणा करा दी बिना मंत्रीमण्डल को बताये। राजा ने कहा- जो धर्म के कार्य होते हैं उन्हें मंत्रीमण्डल में, पंचायत में पास कराना आवश्यक नहीं होता, ये बात सर्वकल्याणमयी, सर्वोदयी है इसलिये हमारा आदेश है कि सबको प्रातःकाल दर्शनार्थ चलना है।

मंत्रिगण बोले-महाराज! हम नहीं जायेंगे। क्यों? हम उन्हें अकिंचन्य मानते हैं, उनका दर्शन करन अमंगल मानते हैं। राजा ने कहा आपको चलना ही पड़ेगा अन्यथा मंत्रीपद त्यागना पड़ेगा। उन्होंने सोचा अब तो चलना ही पड़ेगा। इधर अकंपनाचार्य ने अपने ज्ञान से जाना कि यहाँ का राजा तो सम्यग्दृष्टि है धर्मात्मा है

किन्तु मंत्री मिथ्यादृष्टि हैं। संघ पर कोई उपसर्ग नहीं आ जाये, इसलिये अपने संघ को आज्ञा दे दी कि जब राजा दर्शन करने आये तब उनसे कोई वार्तालाप न करें, सभी ध्यान में बैठ जायें। राजा जब दर्शन करने आया, देखा सभी मुनिराज जिनकी सौम्यमुद्रा है, सभी ध्यान में बैठे हैं। मंत्रियों ने कहा- महाराज! देख लिया, आप जिनकी वंदना करने आये हैं, वे कुछ नहीं जानते, मूक हैं, मूर्ख हैं इसलिये मौन लेकर बैठ गये। राजा ने कहा-मंत्रियों! आपको ऐसी निंदा नहीं करनी चाहिये। ये तपस्वी हैं, तप का बल तीन लोक में अचिंत्य होता है। ये आत्मध्यानी, ब्रह्मज्ञानी साधक हैं। मंत्रिगण चुप न रहे वे बोले-यदि ये ब्रह्मज्ञानी, तत्त्वज्ञानी होते तो आपको उपदेश देते, आपको आशीर्वाद देते, आपको न तो आशीर्वाद दिया न ही अपना मौन तोड़ा। राजा ने कहा- मैं तो दर्शन करके ही धन्य हो गया, ये साक्षात् मोक्षमार्ग हैं। सभी दर्शन कर महल व निज-निज स्थान पर जाने लगे।

एक मुनिराज 'श्रुतसागर जी' जिन्होंने गुरु के आदेश को सुन नहीं पाया था, इसलिये वे आहार करने को चले गये। जब वे आहार से लौटकर आ रहे थे, तभी रास्ते में राजा मंत्री भी जा रहे थे। बलिमंत्री ने उन्हें देखा और कहा-देखो एक बैल ये चला आ रहा है मट्ठा पीकर के। यह कहा ही था तब तक मुनिमहाराज पास में आ गये। श्रुतसागर मुनिराज ने राजा से कहा-राजन्! लगता है आपके मंत्रियों को पीलिया रोग हो गया है। राजन् बोले- महाराज क्षमा करें मैं समझ नहीं पाया। अरे राजन्! आपके मंत्री कहते हैं **तक्रपीतोऽयं** मट्ठा पीला कहाँ सफेद होता है। (यूँ तो इसके दोनों अर्थ हैं) अब बलि ने उनसे वाद-विवाद किया तुम्हारे धर्म से कल्याण नहीं होता, कल्याण तो वैभव के

साथ होता है। मुनिराज बोले- हाँ ठीक कहा कल्याण वैभव के साथ होता है, पर ऐसा कौन सा वैभव है जो कभी नष्ट न हो। फिर क्यों कहते हो कि कल्याण वैभव से होता है।

शाश्वत क्या है?- बोले आत्मा। किस अपेक्षा से?- गुण की अपेक्षा से। गुण ध्रौव्य होते हैं शाश्वत हैं किन्तु पर्याय अशाश्वत होती हैं। तो फिर पर्याय में मूढ़ बुद्धि क्यों? इस प्रकार श्रुत सागर जी महाराज ने उन्हें उपदेश दिया तो वे चारों मंत्री निरुत्तर हो गये। राजा ने उन्हें डाँटा तुम्हें शर्म आनी चाहिये जो मुनिराज से बहस करते हो। वे मंत्री राजा के सामने तो कुछ नहीं बोले, अपनी पराजय स्वीकार कर ली निगाह नीची कर घर चले गये किन्तु मन ही मन में कषाय भड़कने लगी। राजा ने एक नग्न साधु के सामने हमारा अपमान कर दिया। विपरीत धारणा वाले वे चारों ये नहीं सोच पा रहे थे कि राजा ने हमें मिथ्यात्व की कीचड़ से निकाल दिया, हमारे ज्ञान चक्षु खोल दिये, हमारे ऊपर कितनी कृपादृष्टि करवायी वरन् उन्होंने उल्टा ही सोचा। सच है जिसके मिथ्यात्व का उदय होता है उसे सीधी बात समझ नहीं आती।

महानुभाव! और रात्रि में चारों मंत्री मिलकर कहने लगे- "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी" सभी मुनिराजों को मृत्यु के घाट उतारने के लिये चारों नंगी तलवार लेकर चल दिये। इधर जब श्रुतसागर जी महाराज आहारचर्या करके अपने गुरु अकंपनाचार्य के पास पहुँचे और ईर्यापथ प्रतिक्रमण के समय आहार के बाद का मार्ग का सारा वृत्तान्त गुरु को बता दिया, और कहा शास्त्रार्थ में मैंने उन्हें परास्त कर दिया। आचार्य श्री ने कहा-श्रुतसागर ये आपने अच्छा नहीं किया। संभव है तुम्हारे कारण संघ पर उपसर्ग आ सकता है इतना गुरु महाराज का कहना था, वे बहुत घबरा

गये और दु:खी हो गये अश्रुपूरित नेत्रों से पूछते हैं- गुरुवर! मेरे कारण संघ पर उपसर्ग आये ऐसा मैं सहन नहीं कर सकता, मैंने अपराध किया है आप मुझे आदेश करो, इसका जो भी प्रायश्चित होगा मैं करूँगा। अकंपनाचार्य ने कहा ठीक है-24 घंटे का कायोत्सर्ग तुम्हें वहीं करना है जिस स्थान पर तुमने उनसे शास्त्रार्थ किया था। वे श्रुतसागर जी मुनिराज उसी समय वहीं चले गये और वहीं कायोत्सर्ग मुद्रा में जाकर खड़े हो गये।

संध्याकाल का समय हुआ, सूर्य भी अस्त हो चुका था, किंतु उन मंत्रियों का विवेक सूर्य तो पहले ही अस्त हो चुका था, वे चारों बाहर के सूर्यास्त की इंतजारी कर रहे थे। वे चारों रात के अंधेरे में नंगी तलवार लेकर 700 मुनियों को मारने के लिये आये। लेकिन मार्ग में ही जहाँ वाद-विवाद हुआ था, वहाँ उन्होंने देखा अरे! ये तो वही है जिसने हमारा अपमान किया था। वे 699 तो मौन थे, मूर्ख थे ही, पहले इसे रास्ते से हटाते हैं। बलि ने प्रहलाद से कहा तुम प्रहार करो, प्रहलाद ने नमुचि से, नमुचि ने बृहस्पति से कहा कि तुम प्रहार करो। बलि ने कहा-वाक्य का प्रहार तो सबसे पहले मैंने किया था, तलवार का प्रहार पहले तुम में से कोई करो। वे बोले हम नहीं करेंगे, मुनि हत्या सबसे बड़ा पाप होता है। जब मुनिनिंदा का ही परिणाम कुष्ट रोग, नरक आदि नीच पर्याय है तो फिर हत्या करना तो महापाप होता है। किन्तु **'विनाश काले विपरीत बुद्धि'** वे कहने लगे अपमान तो हम चारों का हुआ है इसलिये चारों एक साथ प्रहार करेंगे। चारों ने म्यान से तलवार निकाली और वार करने लगे, किन्तु ये क्या जहाँ मुनिराज ध्यान लगाये हुये थे वहाँ के क्षेत्रपाल का आसन कंपित हुआ उसने चारों को कीलित

कर दिया उन सभी की तलवारें वहीं की वहीं तनी रह गयी और पत्थर की मूर्तिवत् चारों रात भर वहीं खड़े रहे।

प्रात:काल का समय हुआ, लोगों का आना जाना प्रारंभ हुआ देखा-श्रीवर्मा के चारों मंत्री मुनिराज की हत्या करने यहाँ आये थे, ये तो वही हैं जो कल मुनिराज से बहस कर रहे थे, इनसे उत्तर नहीं बना तो ये मारने को आ गये, धिक्कार हो इन्हें धिक्कार! धिक्कार!! ये समाचार पूरे अवन्ति देश की उज्जैनी नगरी में फैल गया। राजा दरबार सहित पहुँचा, पूरा नगर इकट्ठा हुआ, सभी बोले राजन्! यदि आप इन्हें दण्डित नहीं करोगे तो हम प्रजाजन इन्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे मुनिराज पर उपसर्ग करने वाले को हम क्षमा नहीं करेंगे भले ही मुनि महाराज क्षमा कर दें। राजा ने क्रोध में कहा-आप ही क्या मैं भी इन्हें क्षमा नहीं करूँगा, चारों को प्राणदण्ड दिया जाये। तभी उस क्षेत्र का क्षेत्रपाल उपस्थित हुआ, लोग ये न सोचें कि मुनिराज ने इन्हें कीलित कर दिया हो, कोई मंत्र तंत्र कर दिया हो, कही अभिशाप दे दिया हो, किन्तु ध्यान रखना दिगम्बर साधु कभी अभिशाप नहीं देते। जो अभिशाप देते हैं वे दिगम्बर साधु नहीं होते।

महानुभाव! वह क्षेत्रपाल कहने लगा-इन चारों को कीलित मुनिराज ने नहीं मैंने किया है, मेरे क्षेत्र में रहकर के ये ऐसा अपराध करें मैं सहन नहीं कर सकता, इन्हें मैं मृत्यु दण्ड दूँगा। राजा श्रीवर्मा ने कहा इन्हें तो मैं ही मृत्यु दण्ड दूँगा। तभी श्रुतसागर जी मुनिराज ने अपना ध्यान तोड़ा और कहा-ठहरो! मृत्यु दण्ड देना किसी को मौका न देने के बराबर है, गलतियाँ इंसान से ही होती हैं इन्हें अवसर प्रदान किया जाये, इन्हें क्षमा कर दो। ये नहीं जानते इन्होंने क्या कृत्य किया है। राजा ने

कहा- महाराज दण्ड तो मिलना ही चाहिये किंतु हम आपकी बात टालेंगे नहीं, प्राणदण्ड नहीं किन्तु दण्ड अवश्य देंगे। चारों मंत्रियों का मुँह काला कराया और गधे पर बिठाकर नगर के बाहर निकलवा दिया।

वे अवंतिदेश से निकलकर कुरुजांगल देश पहुँच गये। वहाँ महापद्म नाम के राजा राज्य करते थे उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मीमति था, उनके दो पुत्र थे विष्णु और पद्मरथ। एक दिन महापद्म को अपना श्वेत केश देखकर वैराग्य हो गया और यथाजात दिगंबर दीक्षा लेने को तैयार हुये। अपने बड़े पुत्र विष्णु कुमार को राज्य देना चाहा कहा- आप राजा बने और पद्मरथ युवराज। विष्णुकुमार ने पूछा- पिताजी! आप राज्य क्यों छोड़ना चाहते हैं, महापद्म ने कहा-पुत्र! इस राज्य में सच्चा सुख नहीं है, मैं सच्चा शिवसुख प्राप्त करना चाहता हूँ, सिद्धों का साम्राज्य प्राप्त करना चाहता हूँ, विष्णुकुमार ने कहा- पिताजी! जब इस राज्य में सार नहीं है तो फिर हमें क्यों सौंप रहे हैं। पिता जी मैं भी आपके समान मोक्ष का राज्य प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं भी आपके साथ दीक्षा लूँगा। पिता पुत्र दोनों ने दीक्षा ले ली और राज्य छोटे पुत्र पद्मरथ ने संभाला। राजा पद्मरथ राज्य का संचालन कर रहा था किन्तु उसके कई शत्रु पैदा हो गये उन्होंने समय-समय पर राजा पद्मरथ को परेशान करना प्रारंभ कर दिया।

कुंभपुर का राजा था सिंहबल जो बहुत छली-कपटी व अहंकारी था और राजा पद्मरथ की प्रजा को बहुत त्रस्त कर रहा था। पुनः कई बार युद्ध हुआ किन्तु कभी वह छिप जाता, भाग जाता पर पकड़ में नहीं आता। ये चारों मंत्री भटकते-भटकते कुरुजांगल देश में राजा पद्मरथ के पास पहुँच गये, उनका

यशोगान गाने लगे, कहने लगे हम आपकी सेवा करना चाहते हैं। पद्मरथ भोले-भाले उन्होंने चारों को रख लिया। वे बोले-आप जो काम बतायेंगे हम वही करेंगे। पद्मरथ ने कहा-कुंभपुर के राजा सिंहबल को बंदी बनाकर लाओ। वह बलि कुंभपुर गया और महात्मा का रूप बनाकर छल बल से सिंहबल को अपने पास बुलवाने के लिये अपनी तपस्या का ढोंग पूरे नगर में फैलाया और जब उसके मंत्रीगण ने बताया कि एक महात्मा जी बड़े ज्ञानी-ध्यानी हैं हमें भी दर्शनार्थ चलना चाहिये तो राजा ने मना कर दिया। किंतु मंत्रियों ने महात्मा को अपने ही राज्य में बुलवा लिया। वह बलि (महात्मा के रूप में जो था) कहता है-महाराज! आप पर बहुत बड़ा सकंट आने वाला है इसलिये मृत्युंजय का जाप मेरे आश्रम पर किया जायेगा आप भी वहाँ आ जायें तो ठीक रहेगा। सिंहबल उसके आमंत्रण को स्वीकार कर वहाँ पहुँचे। इधर बलि और उसके चेले पहले से ही तैयार थे, सिंहबल वहाँ पहुँचा उसे वे अंदर ले आये उसके हाथ पैर बाँधे और उसे कुरुजांगल देश के राजा पद्मरथ के चरणों में डाल दिया। सिंहबल को बंदी बनाकर वहाँ रखा गया।

राजा पद्मरथ ने उन चारों से कहा- आपने बहुत अच्छा काम किया, मैं आपको कुछ इनाम देना चाहता हूँ, बताओ क्या चाहिये। वे बोले नहीं- पुरस्कार कुछ भी नहीं चाहिये बस आपकी कृपादृष्टि ही पर्याप्त है। किन्तु राजा ने कहा- कुछ भी माँगो, बलि कहता है- राजन्! मुझे कहने में संकोच आता है आप क्षमा करें तो मैं कहूँ- राजा ने कहा आप कहो, महाराज! आप सिंहासन पर जब विराजते हो तो बहुत अच्छे लगते हो, हम भी सात दिन के लिये इस सिंहासन पर बैठना चाहते हैं, सात

दिन में हमारा शौक पूरा हो जायेगा। हम आज तक कभी सिंहासन पर बैठे नहीं कि कैसा लगता है। राजा पद्मरथ ने उन्हें तथास्तु कहकर वचन दे दिया।

अब ये चारों वहाँ मंत्री पद पर रहकर राजा की सेवा करने लगे। सब ठीक ठाक चल रहा था। एक दिन संयोग की बात वे 700 मुनिराज अलग-अलग नगरों में विहार करते हुये करुजांगल देश पहुँचे। मंत्रियों को ज्ञात हुआ कि कोई मुनिसंघ आया हुआ है। वे सोचने लगे राजा पद्मरथ के पिता भी मुनिराज, भाई भी मुनिराज ये मुनिभक्त है मुनिराज की खूब सेवा करेगा, इसे हमारा कुकृत्य मालूम चल गया तो हम चारों को फाँसी पर चढ़वा देगा। क्या करना चाहिये? चारों मिले आपस में बात की और निष्कर्ष निकाला डरने की क्या बात है हमारा वरदान राजा के पास शेष है उसे माँग लेना चाहिये। वे पहुँचे राजा के पास और बोले महाराज! शायद आप भूल गये हो, आपने हमें वचन दिया था, हाँ-हाँ मुझे याद है सात दिन का राज्य आपको देना है। बलि ने कहा-यदि आपको प्रतिकूलता न हो तो आप अभी हमें सात दिन का समय दे दीजिये। राजा ने कहा-तथास्तु! आप सिंहासन स्वीकार करें। नहीं महाराज! हम आपके सामने राजगद्दी पर बैठ नहीं सकते हम चाहते हैं आप सात दिन तक महलों में रहें सात दिन तक राजा हम होंगे। जितने भी आपके अधिकार हैं वे हम प्रयोग कर सकते हैं आप सामान्य नागरिक की तरह से रहेंगे। पद्मरथ ने सोचा ये तो सिर्फ सिंहासन पर बैठने की बात कर रहा था, अब मैं आदेश भी नहीं दे सकता, ये तो पूरी सत्ता को पकड़ कर बैठ गया। सत्ता का प्रयोग ये करेगा किंतु मैं वचनबद्ध हूँ अब क्या करूँ।

मंत्री जैसे ही गद्दी पर बैठा और यज्ञ प्रारंभ कर दिया। उधर मुनिसंघ जो चातुर्मास स्थापित कर उपवास किये बैठे थे। (जिस-जिस के जैसे भी नियम थे) उनके चारों ओर अनेक मृत पशुओं एवं गन्दी वस्तुओं को होमकर चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित करा दी जिसके धुयें से उन मुनियों के कंठ अवरुद्ध होने लगे, बस ऐसा लगा कि मृत्यु के घाट पर पहुँचने वाले हों। तभी आकाश में श्रवण नक्षत्र कंपायमान होने लगा। 28 नक्षत्रों में श्रवण नक्षत्र ऐसा है जब-जब भी जिनशासन पर कोई कष्ट आने वाला हो तो वह कंपित होने लगता है।

मिथिला नगरी में सारचंद्राचार्य तपस्या कर रहे थे। रात्रि में उनकी दृष्टि आकाश में गयी, श्रवण नक्षत्र कांप रहा था, उनके मुख से निकला, हाय। उनके पास ही क्षुल्लक जी बैठे थे, पुष्पदंत क्षुल्लक ने देखा हमारे गुरु के मुख से हाय शब्द निकला, घबराकर बोले क्या हुआ? उन्होंने कहा- पुष्पदंत अनर्थ होने जा रहा है, कुरुजांगल देश की हस्तिनापुर नगरी में 700 मुनियों पर उपसर्ग हो रहा है। क्षुल्लक जी बोले- महाराज मैं प्राण देकर भी उनकी रक्षा कर सकता हूँ आप मुझे आदेश दें मैं पूर्व में विद्याधर था, मेरी विद्यायें अभी मेरे पास हैं आप बताओ क्या करना है। आचार्यवर बोले- वह हस्तिनापुर नगरी सामान्य नहीं, जहाँ तीन-तीन तीर्थंकरों के चार-चार कल्याणक हुये, ऋषभदेव प्रभु का आहार हुआ, पद्मप्रभु आदि अनेक तीर्थंकरों का समवशरण आया। जहाँ के राजा महापद्म दीक्षा को अंगीकार कर चुके हैं इसी भव से वो मोक्ष को प्राप्त करेंगे। उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुकुमार भी दीक्षा को स्वीकार कर धरणीधर पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं, उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है,

वे ही इस उपसर्ग को दूर करेंगे। रात्रि में ही वे क्षुल्लक विद्याबल से वहाँ पहुँचे और ध्यान साधनारत विष्णु कुमार मुनिवर को नमोस्तु कहकर उनका ध्यान भंग कराया। मुनिराज ने देखा- रात्रि मे ये क्षुल्लक जीं यहाँ कैसे? वे बोले- महाराज धर्म पर संकट आया है इसलिये मैं अपने गुरु सारचंद्र की आज्ञा से रात में यहाँ पर आया हूँ। महाराज हस्तिनापुर नगरी में अकंपनाचार्य आदि 700 मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा है। यदि उसका शीघ्र निवारण नहीं किया तो 700 मुनि समाधि को प्राप्त हो जायेंगे।

यह सुनकर विष्णुकुमार मुनि को बहुत दु:ख हुआ, मैं क्या कर सकता हूँ। विवश हूँ। क्षुल्लक जी बोले-महाराज आप कर सकते हैं, आपके पास विक्रिया ऋद्धि है। नहीं, मेरे पास तो कोई ऋद्धि नहीं। महाराज! आपको ज्ञात नहीं आपके पास विक्रिया ऋद्धि है, आप उसका प्रयोग करो, आप चाहें तो यहाँ से हाथ उठाकर के 700 मुनियों को अपने हाथ पर उठाकर अलग रख सकते हैं। किन्तु मुनि अवस्था में ऐसा नहीं किया जा सकता। उपसर्ग दूर करना है, रात्रि में गमन नहीं किया जा सकता, क्या करें, उन्होंने सोचा-वैसे तो ये संयम यूँ ही नहीं छोड़ा जा सकता, भले ही प्राण छोड़े जा सकते हैं। किंतु धर्म की रक्षा के लिये, सारचंद्राचार्य ने भी संकेत किया है कि मुझे उपसर्ग दूर करना है। वे आचार्य अवधिज्ञानी हैं, मैं अवश्य उपसर्ग दूर करने जाऊँगा। वे वामन का वेश धारण कर पहुँच जाते हैं जहाँ राजा बलि किमिच्छिक दान दे रहे थे। वे वेद की ऋचायें बोलते हुये वहाँ गये। वह राजा बलि पहले तो उन्हें देखकर हँसने लगा, वे लौटने लगे बलि बोला- आप लौटे नहीं आप क्या चाहते हैं, मेरे पास से कोई खाली हाथ लौट जाये तो मेरा यह यज्ञ निष्फल हो

जायेगा, आप यहाँ से कुछ न कुछ लेकर अवश्य ही जायेंगे। वामन बोला- नहीं मुझे कुछ न चाहिये, मैं तो देखने आया था। बलि ने कहा- नहीं बिना लिये कोई साधु मेरे द्वार से लौट जाये तो मानों श्रावक का पुण्य ही वह ले जाता है। यदि कोई साधु श्रावक के घर से जल भी लेकर चला आये तो श्रावक को अपना पुण्य देकर आता है। बलि बोला- मैं आपको ऐसे नहीं जाने दे सकता आप जो कुछ भी माँगोगे वह मैं दे दूँगा चाहे वह धन दौलत हो या ये राज्य आप बस कहो क्या चाहिये।

ब्राह्मण रूप धारी वामन ने कहा- अरे जब तू इतनी जिद्द कर रहा है तो मुझे तीन पग जमीन दे दे। बलि ने कहा- अरे यह तो बहुत कम है, पर आपने कहा है तो ठीक है मैं अपने पैरों से आपके लिये भूमि नाप दूँगा क्योंकि आप तो कद में बहुत छोटे से हैं, आप नापेंगे तो जमीन बहुत थोड़ी ही आ पायेगी। आप यदि झोपड़ी भी बनायेंगे तो मेरी तो कमर ही टूट जायेगी मैं उसमें आ भी नहीं पाऊँगा। वे बोले- बलि! कमर झुकने से नहीं, अकड़ने से टूटती है। इसलिये तीन पग भूमि मैं अपने पैर से नाप कर लूँगा। वह हँसने लगा- लगता है यह बोना ब्राह्मण शरीर से नहीं बुद्धि से भी बोना है। वे बोले- बलि! बुद्धि देखने में नहीं आती यह तो समय ही बतायेगा कौन बोना है, कौन बुद्धिमान। ठीक है अब ज्यादा बातें मत कर ब्राह्मण! जहाँ से जमीन नापनी हो नाप ले। बलि! तू अपना वचन खण्डित तो नहीं करेगा? संकल्प लेता हूँ ब्राह्मण! मैं वचन नहीं तोड़ूँगा, तुरंत दान दूँगा। विष्णु कुमार ने अपना आकार बढ़ाया और बढ़ाते-बढ़ाते आकाश तक पहुँच गये, पहला पग रखा सुमेरु पर्वत पर, दूसरा पग रखा मानुषोत्तर पर्वत पर, बोले बता बलि! तीसरा पग कहाँ रखूँ।

बलि ने कहा मैं वचन तो खण्डित नहीं करूँगा ये तीसरा पग मेरी पीठ पर रख दो। वैदिक परम्परा में आता है कि बलि की पीठ पर पैर रखा वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। किन्तु जैन दर्शन के ग्रंथों में आता है वह बलि अपने अपराध की क्षमा माँगता है और विष्णुकुमार जी ने कहा- इस उपसर्ग को अभी दूर कर। इस प्रकार 700 मुनिराज का उपसर्ग दूर हुआ। बलि, नमुचि आदि ने क्षमा माँगी और जिन दीक्षा ग्रहण की।

महानुभाव! उस उपलक्ष्य में यह रक्षा बंधन पर्व मनाया जाता है। वे 700 मुनिराज उपसर्ग सहन करते रहे। वे उठकर क्यों नहीं गये? वे संयम के बंधन में बँधे थे, जिस बंधन से वे बंधे थे हम उस बंधन को वंदन करते हैं। बंधन रस्सी का होता है, राग का होता है, द्वेष का होता है, अन्य-अन्य भी होते हैं किंतु जो बंधन कर्मों के बंधन को काटने वाला है वह संयम का बंधन है। आज हम आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से अनंत बार उस संयम के बंधन की वंदना करते हैं, बार-बार नमस्कार करते हैं। वह संयम का बंधन ही कर्मों का बंधन काटता है। जो उस संयम की वंदना करता है, उस की वंदना करते-करते संयमी की वंदना तो अपने आप हो जाती है।

आज संयम के बंधन का दिवस है। बंधन के वंदन का दिवस है। आप इसकी वंदना करें। हस्तिनापुर में हजारों जैन परिवार थे, वहाँ एक भी ऐसा परिवार बाकी नहीं था जिसने जैन कुल में जन्म लिया हो और उन मुनिराजों को पड़गाहन कर आहार न दिया हो। क्योंकि सभी मुनि महाराजों के कंठ धुएं से अवरुद्ध हो गये थे, इसलिए उस समय सभी ने खीर बनायी थी, सिवैंया बनायी थी जिससे वह धुंआ अंदर चला जाये, सभी

मुनिराज स्वस्थ हो जायें। 700 मुनिराज आहार को निकले जिन-जिन घरों में मुनियों के आहार हुये वे परिवार तो आहार दान में अग्रणी रहे, बाकी वो परिवार जिनके यहाँ मुनिराज नहीं आ पाये उन लोगों ने 700 लोगों को बुलाकर अपने यहाँ भोजन कराया और उनके हाथ पर रक्षासूत्र बाँधा। यह रक्षा का बंधन है इस पहचान के लिये। ये 700 व्यक्ति पुण्यात्मा हैं जिनके यहाँ मुनियों के आहार हुये उनकी वंदना की।

महानुभाव! यह रक्षाबंधन का पर्व, जिसमें यह कच्चा धागा, प्रेम का धागा, रक्षा का धागा नि:संदेह आज भी परम्परागत रूप से चला आ रहा है। मंदिर में रक्षा सूत्र बाँधकर हम संकल्प लेते हैं देव-शास्त्र-गुरु की रक्षा का, जिनधर्म, जिन आयतनों की रक्षा का संकल्प सभी लेते हैं।

महानुभाव! हमें विश्वास है आप इस संकल्प को अवश्य निभायेंगे। उपसर्ग मात्र तलवार का नहीं होता, वाक्यों का प्रहार भी उपसर्ग कहलाता है, हमारे देव-शास्त्र-गुरुओं की कोई निंदा करेगा हम उसे भी जवाब देंगे। जिनशासन की रक्षा में सदैव अग्रणी रहेंगे, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# चेतना का प्राण

धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!

संसार में अनादिकाल से छः द्रव्य विद्यमान हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। कभी भी छः द्रव्य से सात नहीं हो सकते और कभी छः द्रव्य के पाँच भी नहीं हो सकते। इन छः द्रव्यों में सबसे उत्तम द्रव्य जीव द्रव्य है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य अनादिकाल से शुद्ध हैं और अनंतकाल तक शुद्ध रहेंगे। पुद्गल द्रव्य अनंतबार शुद्ध होता है पुनः अनंतबार अशुद्ध अवस्था को, स्कन्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है, किन्तु जीव द्रव्य एक बार यदि शुद्ध हुआ तो पुनः कभी अशुद्ध नहीं होता।

जीव द्रव्य का लक्षण बताते हुये आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है **"चेतना लक्षणो जीवः"** जीव वह है जिसमें चेतनता पायी जाती है। चेतना के दो अर्थ दिये, एक ज्ञान रूप और दर्शन रूप। जानने की शक्ति और देखने की शक्ति। देखने का आशय वह शक्ति जो शब्दों में व्यक्त न की जा सके। जानने का आशय वह शक्ति जो स्वयं के जानने में आती है और दूसरों को व्यक्त भी की जाती है। आत्मा का हित मोक्ष में है जैसा आप पढ़ते हैं-

**"आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।**
**आकुलता शिवमाँहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये।।**

आत्मा का कल्याण मोक्ष में है और मोक्ष की प्राप्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से होती है। इसको ही आचार्य समंतभद्र स्वामी जी ने धर्म कहा है।

**सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।**
**यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः।।3।।**

धर्म के नायक तीर्थंकर प्रभु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र को धर्म कहते हैं। यह धर्म ही 'चेतना का प्राण' है। इस धर्म को बोधि कहते हैं। सम्यक्दर्शन की परिभाषा आप जानते हैं- "परमार्थ रूप वीतरागी देव, उनकी वाणी एवं निर्ग्रंथ गुरु पर श्रद्धान करना यह सम्यग्दर्शन है।" पुनः "आत्मा-अनात्मा का भेद विज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है।" और "आत्मा का आत्मा में लीन होना या पापों से बचकर आत्मा का शुभ में लग जाना यह चारित्र होता है।"

सम्यक्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों को बोधि कहा जाता है। बोधि अत्यंत दुर्लभ है। उस बोधि की प्राप्ति हर भव में संभव नहीं। सिर्फ मनुष्य भव में ही संभव है। वह भी कर्म भूमि का मनुष्य जो उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ जिसने गर्भज जन्म लिया हो, जिसने पर्याप्तियों को पूर्ण किया हो, अच्छी संगति, उत्तम संहनन आदि को प्राप्त करके वह बोधि को, परम बोधि को प्राप्त करता है। उस बोधि के माध्यम से अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने में समर्थ होता है।

महानुभाव! साधक बाल्यअवस्था से, किशोरअवस्था से, युवावस्था से, प्रौढ़ावस्था से, वृद्धावस्था से अपनी साधना को प्रारंभ करे किन्तु उस साधना का उद्देश्य एक ही होता है वह है 'समाधि।' बोधि के संस्कारों को अगले भव तक ले जाना समाधि कहलाता है। समाधि का आशय होता है ध्यान, समाधि का आशय होता है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता, आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना। समाधि विश्व का सर्वोत्कृष्ट धर्म है।

आचार्यों ने मरण का अन्तर्भाव भी कला में किया है। इस संसार में जन्म को महोत्सव बनाने वाले तो बहुत हैं किन्तु जैन दर्शन एक ऐसा दर्शन है जो मृत्यु को भी महोत्सव बनाने की

कला सिखाता है। आचार्य भगवन् श्री उमास्वामी मुनिराज ने बहुत ही वैज्ञानिकपूर्ण तथ्य कहा- "सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च।" सुख के साथ दुःख भी उपकारक है, वैसे ही मृत्यु भी उपकारक है। किंतु फिर भी मरण का नाम आते ही व्यक्ति के अंदर भय का संचार हो जाता है। किन्तु मरण भी उपकारक है, वह भी माँगलिक होना चाहिए। कहा भी है-

**शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवनेविषयेशिनाम्।**
**वार्द्धक्ये मुनिवृत्तिनां, योगान्तेनतनुत्यजान्।।**

बाल्यावस्था में विद्यार्जन में, विद्याभ्यास में मग्न रहें कहीं दूसरी ओर उपयोग न हो। जब शिक्षा पूरी हो जाए तब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। आचार्य भगवन् श्री जिनसेन स्वामी ने इसका सुंदर व स्पष्ट उल्लेख श्री आदिपुराण ग्रंथ के अन्तर्गत "वर्ण लाभ क्रिया" आदि माध्यम से किया है। पुनः सद्गृहस्थ बनकर जीवन यापन करने के पश्चात् वृद्धावस्था आकर उसे घेर ले उससे पूर्व पुत्र को जिम्मेदारियाँ सौंपकर स्वयं संन्यास स्वीकार करे। निराकुलता से आत्मकल्याण करते हुए शेष जीवन व्यतीत करे।

वर्षभर अध्ययन करने वाला विद्यार्थी परीक्षा के समय घबराता नहीं है, निर्भय हो परीक्षा देने जाता है, उत्तीर्ण होने का विश्वास भी मन में रहता है किन्तु सालभर नहीं पढ़ने वाला विद्यार्थी परीक्षा के निकट आने पर भयभीत होता है। इसी प्रकार जो साधक जीवनभर साधना करता है वह घबराता नहीं अपितु स्वयं मृत्यु का स्वागत करते हैं। मानसिक रूप से तैयार होकर अपनी साधना को और वृद्धिंगत करता है। 'भावसंग्रह' की उक्ति है कि जब शरीररूप परपदार्थ को त्यागने की इच्छा से जीव आत्मनिष्ठ होकर मित्रों पत्नी-पुत्रों, धन-वैभव, भौतिक सुख आदि से मोह छोड़कर पंचपद (णमोकार मंत्र) स्मरण करते हुए

मरणव्रत लेता है, महामुनियों ने उसे सल्लेखना कहा है।

जब अनुभूति होती है कि प्राण अधिक समय तक देह में नहीं ठहर सकते तब निर्ग्रंथ मुनि, साधक अत्यंत विरक्त हो 'सल्लेखना' के द्वारा संसार के बंधनसूत्रों को सदैव के लिए तोड़ देते हैं। यह अनुपम मृत्यु महोत्सव है। ऐसे उत्तम महोत्सव में वाद्य बजाने जैसे उत्सवों की रचना भी हो जाती है। इस निर्मोह भाव से समाधिमरण करने वाला साधक अपने जीवन भर की साधना, तपोयुक्त मंगल व लोकोपकारी जीवन को प्रदर्शित करता है एवं अपने जन्म को सार्थक कर लेता है। मृत्यु संसारी प्राणियों को भले ही त्रस्त करे किंतु दिगंबर मुनि, श्रमणों को तो यह अपने जीवनभर की साधना, तपस्या फलीभूत प्रतीत होती है।

जिस प्रकार सराय छोड़ते यात्री को, डाल से उड़ती चिड़िया को, पतझड़ में वृक्ष से अलग होते पत्रों को वियोग की अनुभूति नहीं होती उसी प्रकार राग-द्वेष से विहीन साधु जो संसार में सभी बंधनों को तोड़ चुके हैं, अंतिम देह-बंधन को तोड़ने के लिए सल्लेखना व्रत को अंगीकार कर लेते हैं सल्लेखना वीतरागता की कसौटी है। वह मुनिधर्म-सिंहवृत्ति है। वीतराग मुनियों की चर्या दिगंबरत्व से प्रारंभ होती है और समाधिमरण के साथ पूर्णता को प्राप्त होती है।

बिना समतामय परिणामों के समाधि नहीं होती। समतामय परिणाम के लिये रत्नत्रय अनिवार्य है। जब समतामय परिणाम होते हैं तभी समाधि की भूमिका बनती है। समाधि का अर्थ होता है आधि-व्याधि और उपाधि का परित्याग। यदि शरीर में कोई आधि या व्याकुलता है, उसका अनुभव हो रहा है तब समाधि की प्राप्ति दुर्लभ है, यदि कोई मानसिक क्लेशादि है तब भी समाधि होना मुश्किल है और यदि कोई उपाधि, प्रतिष्ठादि का

लोभ है तब भी समाधि असंभव है। आधि मानसिक रोग, व्याधि शारीरिक रोग और उपाधि ख्याति पूजा लाभ पद प्रतिष्ठा या पदवी के रहते हुये समाधि की साधना नहीं हो सकती।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी ने लिखा है-

**आबाल्याज्जिनदेव देव! भवतः श्री पादयोः सेवया,**
**सेवा सक्त विनेय कल्पलतया, कालोऽद्ययावद्गतः।**
**त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,**
**त्वन्नाम प्रतिबद्धवर्णपठने, कण्ठोऽस्त्व कुण्ठो मम॥**

हे भगवान्! मैंने बाल्यावस्था से संन्यास को स्वीकार किया, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर के रत्नत्रय की साधना की है, देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति की, शक्ति अनुसार तप किया है इसका फल मैं क्या चाहता हूँ- "बस यही चाहता हूँ कि अंतिम समय में जब मेरे प्राण इस शरीर का परित्याग करें तो मेरा कण्ठ अरिहंत नाम लेते लेते अवकुण्ठित हो जाये अंतिम शब्द यदि मुख से निकले तो 'अरिहंत' ही निकले। मेरे ध्यान में निरंतर सिद्धों का चिंतन बना रहे, मैं यही चाहता हूँ अंत समय में मेरे सिर पर आचार्य परमेष्ठी का वरद हस्त रहे, मेरे कानों में उपाध्याय परमेष्ठी की मंगलमय दिव्य संबोधन वाणी के शब्द कर्णगोचर हों और मेरे समीप यथाजात दिगम्बर मुनिराज व साधर्मी बन्धु हों जो कि मुझे बार-बार समाधि के लिये बल ऊर्जा और सजगता प्रदान करें। इस प्रकार की मृत्यु की मैं कामना करता हूँ। वांछा करता हूँ, अपनी पूरे जीवन काल की तपस्या का यह फल माँगता हूँ।"

'सल्लेखना' के स्वरूप से अपरिचित जन इसमें 'आत्महत्या' जैसे घृणित शब्द की संभावना करते हैं। सल्लेखना आत्मघात नहीं है। सल्लेखना में तो मरण समय निकट जानकर संसार के

समस्त प्राणियों के प्रति क्षमा का भाव धारण कर कषायों को त्यागकर भगवान् का नाम लेते हुए शांति से मृत्यु का वरण किया जाता है, आवेश में प्राणों का परित्याग नहीं किया जाता। आत्महत्या करने वाला शान्तिपूर्ण, मरण योजना नहीं बनाता वह तो कषायों के तीव्र आवेश में उद्विग्न आकुल-व्याकुल, व्यथित हो, कूदकर, जलकर, विष भक्षण आदि के माध्यम में मरण में प्रवृत्त होता है। यह अविवेकारिता का लक्षण है। इसके विपरीत प्रसन्नतापूर्वक कर्म बेड़ियों को तोड़ने के लिए निराकुलता से मंद कषायों के साथ सामने खड़ी मृत्यु का, परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए वरण करते हैं। आत्महत्या करने वाला जीवन से भयभीत है अतः कायर है जबकि समाधि को स्वीकार करने वाला जानता है कि आयु कर्म पूर्ण होने पर नहीं जी सकता। वह मृत्यु का स्वागत करता है अतः वीर है। आत्मघाती दुर्गति को प्राप्त करता है जबकि समाधिमरण करने वाले के कर्मबंधन नष्ट होते हैं और सुगति को प्राप्त करता है।

महानुभाव! समाधि उत्कृष्ट धर्म है। समाधि के लिये संसार का कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो नहीं चाहता हो। "अन्ते समाहिमरणं" अंत में सभी समाधि चाहते हैं, क्योंकि वह समाधि सभी धर्मों का सार है। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी केवली भगवान् ने इस समाधि को कहा है-

**अंतः क्रियाधिकरणं तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।**
**तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम्।।**

ये समाधि अंतरंग की विशुद्धि का फल है, बाहर की क्रियाओं का फल समाज में प्रशंसा की प्राप्ति, पूजा की प्राप्ति, पद की प्राप्ति हो सकती है किन्तु समाधि की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक अंतरंग में परिणाम विशुद्ध न हों। बड़े-बड़े साधक

तपस्वी भी हो सकते हैं, हो सकता है अंत में समाधि प्राप्त न कर पायें। कई बार ऐसा भी होता है कि एक गृहस्थ भी समाधि के लिये आता है और अंत में वह भी उत्तम समाधि को प्राप्त कर लेता है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसने अंतरंग की विशुद्धि के साथ क्रिया की, किसने बहिरंग में चारित्र का पालन किया।

समाधि बहिरंग की क्रिया से नहीं मिलती, चेतना के विशुद्ध परिणामों से मिलती है वही समाधि वास्तव में चेतना का प्राण है, वही धर्म का मर्म है उस समाधि को प्राप्त करने के लिये चाहे महीनों-महीनों के व्रत किये जायें, चाहे उपवास किये जायें, चाहे घंटों-घंटों तक सामायिक की जाये, चाहे ध्यान लगाया जाये, चाहे घंटों स्वाध्याय कर रहे हैं, चाहे तत्त्वचिंतन कर रहे हैं, चाहे लोगों को धर्म की प्रेरणा दे रहे हैं, सब कुछ त्याग करके यथाजात दिगम्बर होकर साधना कर रहे हैं वह केवल उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये। इस साधना मार्ग में अनुकूल-प्रतिकूल साधन मिलते हैं, उनकी परवाह न करके शिव लक्ष्य को प्राप्त करने का ध्येय रहता है। मार्ग में ठहरना इस राही का उद्देश्य नहीं है, यह राही अंतिम मंजिल तक पहुँचना चाहता है। जो अंतिम मंजिल को लक्ष्य बनाकर के चलते हैं वे निःसंदेह अंतिम मंजिल तक पहुँच जाते हैं। किन्तु जो राही मार्ग की अनुकूलता-प्रतिकूलता को देखकर के कहीं ठहर जाते हैं। भवाताप से तपे, कहीं शीतल छाया मिली तो वहाँ बैठ गये, तो वे मंजिल तक नहीं पहुँचे। या मार्ग में कहीं शूल मिले तो उनके पैर लहुलुहान हुये और वहीं बैठ गये यात्रा के भय से आगे न बढ़ सके या फूलों ने घेर लिया तो भी आगे न बढ़ सके। कभी जीवन में सुख-सुविधा आती है, जीवन में पद प्राप्त होते हैं, प्रतिष्ठा प्राप्त होती है या पुण्य का इतना संचय हो जाता है कि लोग आपको हाथों पर रखें, पलकों

में बसायें, हृदय में बसायें किन्तु आपको वहाँ बसना नहीं है, आपको तो सिर्फ और सिर्फ अपनी आत्मा में ही वास करना है, किसी और जगह वास नहीं करना है।

महानुभाव! वह राही आगे बढ़ता चला जाता है, नदी की तरह से, जैसे नदी- "शत-शत बाधा बंधन तोड़, निकल चला मैं पत्थर फोड़" वह झरना निकलता है पत्थर को फोड़कर के और वह नदी बन जाती है-

**"पारावार मिलन की चाह, मुझे मार्ग की क्या परवाह।**
**जाता हूँ मैं भृकुटि मरोड़ निकल चला में पत्थर फोड़॥**

ऐसे ही वह साधक मार्ग की परवाह नहीं करता वह झरने के पानी की तरह से प्रारंभ का उद्‌गम स्थान बहुत छोटा सा होता है, किन्तु बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ी नदी का रूप ले लेता है। लोग नदी की पूजा भी करें तब भी नदी अपने लक्ष्य से च्युत नहीं होती, लोग चाहे नदी की निंदा करें तब भी अपने लक्ष्य से च्युत नहीं होती। उसमें फल डालें तब भी नदी ठहरती नहीं है, मुर्दा बहायें तब भी नदी ठहरती नहीं है। कोई कुछ भी करे वह नदी किसी की परवाह किये बिना पारावार (सागर) तक पहुँच जाती है, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है। इसी तरह से साधक भी अपने लक्ष्य तक चला जाता है, तीर की तरह से। वह तीर चाहे फूलों के बीच में से जाये, चाहे तीर काँटों के बीच में से जाये, चाहे वर्षा के बीच से जाये, चाहे धूप में से जाये, वह तीर अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। ऐसे ही साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सब कुछ समर्पित कर देता है। यदि कुछ और चाहता है तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी। लक्ष्य चाहता है तो और कुछ रास्ते में नहीं मिल सकता। मिलेगा किन्तु उसे प्राप्त नहीं करना है।

महानुभाव! वह समाधि नि:संदेह अत्यंत उत्कृष्ट आत्मा की निधि है, उससे बड़ी निधि संसार में कुछ भी नहीं, वही स्वात्मोपलब्धि का कारण है, वही सिद्धि का कारण है, आत्मा के समग्र वैभव को प्राप्त करने का कारण है। इसलिये उसे प्राप्त करने की भावना तो सभी भाते हैं, किन्तु साधना विरले व्यक्ति ही कर पाते हैं। सौ चलते हैं तब एक पहुँचता है। दस कहीं रुके, दस कहीं रुके, कोई कहीं भटक गया, कोई कहीं भटक गया सौ के सौ मंजिल पर नहीं पहुँचते। जब भी चलेंगे तो सौ चलेंगे, पहुँचने वाला एक ही होगा। आप कहें कि सौ के सौ पहुँच जायें तो ऐसा होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि सभी चलते हैं, सभी की मंजिल एक होने के बावजूद भी रास्ते के विघ्न उन्हें आगे नहीं बढ़ने देते। आपके हाथ में पाँच अँगुली हैं, पाँचों एक जैसी नहीं हैं, हाथ आपका है फिर भी पाँचों अँगुली अलग, पाँचों का कार्य अलग, पाँचों का नाम अलग, पाँचों का लक्षण अलग, क्रियाचर्या सब अलग-अलग है। ऐसे ही सब साधक एक जैसे नहीं होते, सभी साधकों के मन में अलग-अलग भाव होता है।

महानुभाव! पहले तो साधना के क्षेत्र में उतर पाना भी बहुत बड़ी बात है। यह संसार का मोह छोड़ना बड़ा कठिन है, भोगों का मोह छोड़ना बड़ा कठिन है और पुन: शरीर के प्रति जो राग की तीव्रता है उसे त्याग कर पाना बड़ा कठिन है। किन्तु जो व्यक्ति संसार शरीर भोगों का त्याग करके, उनसे विरक्त होकर के आत्मा की निधि को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ जाते हैं, और वे 100 बढ़ते हैं उनमें से कोई एक न एक तो प्राप्त करता ही करता है। यदि हीरे की खदान को बंद कर दिया जाये ये सोचकर कि इसमें से अब हीरे नहीं निकल रहे, कंकड़-पत्थर ही निकल रहे हैं तो हीरा निकलना बंद हो जायेगा। किंतु उन कंकड़-पत्थरों

के बीच में से कोई न कोई हीरा निकलता जरूर है।

ऐसे ही यह जिनशासन का जो मार्ग है, वीतरागता का जो मार्ग है इसमें सामान्य मुनि भी निकलते हैं, इसमें तीर्थंकर जैसे हीरे भी निकलते हैं। यह मार्ग कभी अवरुद्ध न हो, इसी मार्ग से आत्मा परमात्मा बनती है और कोई दूसरा मार्ग नहीं।

भारतीय श्रमण संस्कृति के अमर-गायक आचार्यों ने मरण को माँगलिक बनाने को कहा। निराकुल भाव से 'समाधिमरण करना जीवन की समस्त साधनाओं को सफल बनाना है। यदि श्रमण के जीवन को सूर्य की उपमा दी जाए तो दीक्षा को ग्रहण करना सूर्य के उदयकाल के समान है, सम्यक्चारित्र का पालन करना तपोमय मध्याह्न काल है और सल्लेखना सन्ध्या है। जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल लालिमा को लिए होता है उसी प्रकार संध्याकाल में भी होता है। जीवन और मरण दशाओं में साम्यबुद्धि रखना मुनियों का आभूषण है। व्रतों का पालन करते हुए देह का परित्याग करना सर्वोत्तम पक्ष है। शाश्वत धर्मपालन को नश्वर देह के लिए कभी नष्ट नहीं करना चाहिए क्योंकि देह की प्राप्ति तो पुनः हो सकती है किन्तु धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है। यही सोचकर साधक अपनी साधना में अडिग रहते हैं और समाधिमरण कर मरण को भी मंगलकारी बना देते हैं, मृत्यु को महोत्सव बना अन्यों को भी उसी अनुरूप प्रेरणा प्रदान करते हैं।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# इन्द्रधनुष

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

ऐसी क्या विशेषता है इस शब्द में जिसे प्रवचन का विषय बनाया। एक सामान्य सा शब्द है 'इन्द्रधनुष'। बचपन में देखते थे आकाश में एक सुंदर सी लकीर दिखायी दे रही है जिसमें सप्तवर्ण हैं। बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। ये सप्तरंग आकाश में एक पंक्ति में सरल रेखा में नीचे से ऊपर तक दिखाई देते हैं। उसे इन्द्रधनुष के नाम से लोक में लोग जानते हैं। जो लोग उसकी गहराई को नहीं जानते वे लोग कहते हैं कि ये इन्द्र का धनुष है। जब इन्द्र युद्ध करने के लिये जाता है, इसी धनुष के माध्यम से शत्रुओं को पराजित करता है। चाहे इन्द्र ने कभी जीवन में युद्ध किया या नहीं किया, वैदिक परम्परा के लोग कहते हैं कि देवताओं का और राक्षसों का भी पहले कभी युद्ध हुआ था, समय-समय पर देवों के और असुरों के युद्ध होते रहे हैं। सुर और असुर दोनों एक साथ नहीं बैठ सकते हैं। युद्ध का बहाना चाहे कोई भी रहा हो, समुद्र मंथन के बाद प्राप्त हुये 14 रत्न उसके बँटवारे की बात पर युद्ध रहा या अन्य किसी कारण से युद्ध की भूमिका तैयार हुई किन्तु वैदिकों में कहते हैं- ऐसी परम्परा रही है कि सुर और असुरों का संग्राम होता रहा है।

महानुभाव! हम इससे थोड़ा और आगे चलें, यह तो बालबोध जैसी बातें हैं बालकों के लिये, उन्हें रोचक लगती हैं सुनने में। और रोचक लगता है इन्द्रधनुष देखने में किंतु हमारी बाल्य अवस्था छूट गयी तो अब थोड़ा और आगे बढ़कर के देखें।

वास्तव में इन्द्र जो स्वर्ग का सबसे वैभवशाली, देवताओं का अधिपति कहलाता है, जिसे 'शक्र' कहते हैं, 'पुरन्दर' कहते हैं, 'वज्री' कहते हैं, 'देवराज' कहते हैं, 'देवाधिपति' कहते हैं इत्यादि नामों से उसे संबोधित करते हैं। वह इन्द्र स्वर्ग में है, साधिक दो सागर तक अपनी आयु को पूर्ण करता हुआ, वहाँ के दिव्य भोगों का सेवन करता हुआ, उसके साथ-साथ तीर्थंकर आदि के पंचकल्याणक सम्पन्न करके, अकृत्रिम जिनालयों की वन्दना करके सातिशय पुण्य का अर्जन भी करता है और पुनः वहाँ से च्युत हो मोक्ष को प्राप्त करता है।

यह तो है प्रतीकात्मक, पर वास्तव में इन्द्र है कौन? इन्द्र है हमारी आत्मा, और ये इन्द्रियों का वैभव उसकी सेना है। इन्द्र की भी सात प्रकार की सेना मानी जाती है। भगवान् के पंच कल्याणकों में, वह इन्द्र अपने वैभव के साथ आता है, जन्म कल्याणक के समय विशेष वैभव के साथ आता है। वह इन्द्र हमारी आत्मा, उसके पास कौन सा धनुष है? उसके कौन से असुर हैं? कौन से शत्रु हैं इसके बारे में जरा विचार करें।

हमारी आत्मा आठ कर्मों से बंधी हुयी है, आठ कर्मों के जाल में फँसी हुयी है। वैदिक परम्परा में कहा जाता है अष्ट असुर होते हैं। वैसे तो भवनवासी देवों के दस भेद होते हैं किन्तु वैदिक परम्परा में आठ असुर मानते हैं, विचार करने पर लगा कि ये आठ असुर भवनवासी देवों को नहीं मानते, ये आठ असुर संभव है आठ कर्मों को ही मानते हैं। ऋषभदेव भगवान् को शंकर नाम से भी संबोधित करते हैं, हे भगवान्! आप ब्रह्मा हो, विष्णु-महेश हो, शंकर हो तब ऐसा लगता है शिव ने तीसरा नेत्र खोलकर आठ

असुरों को भस्म कर दिया था, त्रिशूल के माध्यम से भस्म किया था और अपन उसे इस प्रकार से जानते हैं कि आदि शिव ऋषभदेव भगवान् जिन्होंने सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान- सम्यग्चारित्र का त्रिशूल चलाया। बीच का डंडा ज्ञान का प्रतीक आजू-बाजू की पत्ति सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप। ज्ञान को पकड़कर के उन्होंने ध्यान किया। एकाग्र हो गये उस रत्नत्रय के त्रिशूल से पुनः 8 असुरों को भस्म कर दिया। वे आठ असुर और कोई नहीं, गहराई में जाकर देखते हैं तो ऐसा लगता है वे असुर हैं- ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय, आयु, नाम गोत्रकर्म। ये आठ कर्म नष्ट करके उन्होंने शिवत्व को प्राप्त कर लिया।

वैदिक परम्परा कहती है कि ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता होता है, विष्णु सृष्टि का संरक्षक होता है और शंकर सृष्टि का संहारक होता है। भगवान् ऋषभदेव ने युग के प्रारंभ में धर्म की स्थापना की। यद्यपि ये धर्म अनादिनिधन है किन्तु यहाँ पर जैसे ही कर्म भूमि का प्रारंभ हुआ तब षट्कर्मोपदेश भी दिये और केवली होने पर धर्मोपदेश भी दिये। भगवान् ऋषभदेव स्वामी को आदि ब्रह्मा कहा जाता है, क्योंकि युग की आदि में उन्होंने ही कर्मभूमि के कार्यों की विधि बतायी। ऋषभदेव भगवान् ने अपने जीवन की अवसान की विधि भी बतायी, इसलिये उन्हें विष्णु भी कहा जाता है, धर्म का प्रवर्तन उनसे हुआ, धर्म का संरक्षण भी उन्हीं के माध्यम से हुआ। 1 हजार वर्ष कम 1 लाख पूर्व तक उन्होंने धर्म की देशना दी, संरक्षण किया इसलिये विष्णु की संज्ञा भी उन्हें सार्थक होती है और उन्होंने बाहर के संसार को नष्ट नहीं किया, अपने चित्त में विद्यमान जो संसार था उस भव का संहार कर दिया, इसलिये वैदिक परम्परा के अनुसार

उन्हें शंकर संज्ञा भी दी जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।

महानुभाव! आठ कर्म उन्होंने नष्ट किये, यदि हम आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो जैसे इन्द्र सात प्रकार की सेना लाता है, वह इन्द्र माना कि धनुष के माध्यम से असुरों का संहार करता है, तो वह इन्द्र स्वरूपी मेरी आत्मा सात प्रकार की सेना अर्थात् सात तत्त्व जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सात तत्त्व का जब जीव को बोध होता है। मैं जीव हूँ, अनादिकाल से जो जीता था, जी रहा है, जीता रहेगा वह जीव है। "चेतना लक्षणो जीवः" चेतनता जिसका लक्षण है वह जीव है। जिसमें चेतनता नहीं पायी जाती है वह अजीव है। पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये द्रव्य कभी भी जीव रूप नहीं हो सकते। और जीव कभी भी अजीव रूप नहीं हो सकता। इस जीवात्मा का एक प्रदेश भी अजीवरूप नहीं होता और अन्य अजीव द्रव्यों का एक भी प्रदेश आत्मरूप नहीं होता। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी ने समयसार की 22, 23, 24वीं गाथा में कहा- मैं न कभी पुद्गल का था, न हूँ, न हो सकूँगा। पुद्गल न मेरा कभी था, न है, न हो सकेगा। पुद्गल पुद्गल था, है और रहेगा। जीव-जीव था, है और रहेगा। जीव अनादिकाल से अशुद्ध है एक बार शुद्ध हो गया तो पुनः कभी अशुद्ध नहीं होगा। पुद्गल अनंतबार शुद्ध भी हो जाता है और बार-बार अशुद्ध हो जाता है।

तो ये आत्मा सात तत्त्वों की सेना लेकर चलता है। 7 तत्त्वों का बोध हो गया, उसकी सेना तैयार हो गयी। जिसको सात तत्त्वों का बोध नहीं है ऐसी इन्द्रस्वरूपी आत्मा आठ प्रकार के असुरों को नष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकती। अब वह सेना यदि निहत्थी चली जाये, उस पर कोई अस्त्र-शस्त्र न हों तो

सेना शत्रुओं को कैसे पराजित करेगी? तो पुनः प्रतीकात्मक रूप से कहा धनुष लेकर जाये। धनुष से प्रहार करे, तलवार का वार करने पर कहीं शत्रु हावी न हो जायें, ढाल से सुरक्षा करने पर भी रक्षा न हो पाये। किंतु पहले जो युद्ध होते थे वे धनुष के ज्यादा होते थे। कहते हैं दिव्य अस्त्र-शस्त्र भी होते थे, ऐसे-ऐसे बाण होते थे कि अग्नि बाण चलाया तो अग्नि हो गयी, जल बाण जलाया तो अग्नि शांत हो गयी, नागपाश बाण चलाया तो नाग निकलने लगे, गरुड़पाश चलाया तो उन्होंने नाग को बाँध लिया। पुनः मूर्च्छित बाण चलाया तो सब मूर्च्छित हो गये, जाग्रत बाण चलाया तो सब जाग्रत हो गये, तमसबाण चलाया तो अंधकार छा गया, प्रकाशबाण चलाया तो प्रकाश हो गया तो ऐसे पहले बाण होते थे।

उत्कृष्ट पुरुषों ने तलवार, लाठी आदि से युद्ध नहीं किये, उन महापुरुषों ने युद्ध भी किये तो ऐसा शास्त्र वाक्य है कि वे धनुषादि के माध्यम से करते थे। यदि नारायण-प्रतिनारायण के युद्ध हुये तो अधिकांश युद्ध धनुषबाण के माध्यम से हुये।

महानुभाव ये 'सप्त धनुष' क्या है? ये सप्त धनुष हैं 'सप्तभंगी।' स्यात्अस्ति, स्यात्नास्ति, स्याद्अवक्तव्य, स्यात् अस्तिअवक्तव्य, स्यात् नास्तिअवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य और स्यात् आस्ति-नास्ति ये सात भंग हैं इन सात भंग को समझे बिना द्वादशांग को समझ नहीं सकते। पूरे द्वादशांग का सार इतना सा ही है-

**जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः**
**यदन्य दुच्यते किंचित् सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः॥**

**जीव जुदा पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार।**
**और कछु विस्तार जो, याही को विस्तार।।**

संक्षेप में इतना ही है अपने शत्रु ये आठ कर्म है और विस्तार से देखो तो 148 कर्म प्रकृतियाँ हैं इनको समूल नष्ट करने के लिये सप्तभंगी ये 7 प्रकार के इंद्रधनुष, सात तत्त्व की सेना लेकर के जब इन्द्र (आत्मा) मोक्ष मार्ग पर बढ़ती है तब अपने संसार का नाश करती चली जाती है। आठ कर्म नष्ट होते चले जाते हैं।

महानुभाव! दूसरी अपेक्षा से देखें तो इन्द्र नाम की कोई चीज है सुना है और धनुष भी आपने जाना है, आप आकाश में देखते हैं किन्तु वह होता नहीं दिखता है। और जो दिखता है, पर होता नहीं उसे कहते हैं माया। संसार में जो मायाजाल फैला हुआ है। वैदिक परम्परा वाले व्यक्तियों से पूछो तो कहेंगे-ब्रह्म एक है दूसरी उसके साथ है माया। आपको शायद कालीदास के बारे में ज्ञात होगा- एक राजकुमारी जिसने यह संकल्प लिया था कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा मैं उसी से शादी करूँगी। बड़े-बड़े चोटी के विद्वान् आये किन्तु उसे पराजित न कर सके। विद्वानों ने गोष्ठी की कि इसकी शादी किसी मूर्ख से करायेंगे। वे विद्वान् मूर्ख को खोजने चले तो देखा जंगल में एक व्यक्ति वृक्ष पर बैठा है और वह जिस डाली पर बैठा है, उसे ही काट रहा है। विद्वानों ने कहा-अरे मूर्ख! गिर जायेगा यहाँ से डाली काट रहा है। दूसरी पर बैठ जा। वह कुछ नहीं बोला और डाली काटने में लगा रहा, जब डाली कटी वह नीचे गिरा, तो उसे लगा, ये लोग वास्तव में ठीक कह रहे थे, ये तो बहुत बड़े

विद्वान् हैं।

उस व्यक्ति ने कहा-तुमने कैसे जाना कि मैं नीचे गिर जाऊँगा, वे बोले-अपने दिव्य ज्ञान से। दिव्यज्ञान यदि आपके पास है तो उससे मुझे कोई अच्छी बात बता दो। वे विद्वान् बोले-हमारा दिव्य ज्ञान कहता है कि तुम राजकुमारी के साथ ब्याहे जाओगे, तुम्हारा विवाह राजकुमारी के साथ होने वाला है, वह बहुत बुद्धिमान् राजकुमारी है। वह बोला-ऐसा नहीं हुआ तो? अरे ऐसा कैसे नहीं होगा चलो हमारे साथ। वे विद्वान् और वह व्यक्ति आये और राजकुमारी के सामने बात रखी हमारे साथ बहुत बड़े विद्वान् आये हैं आपसे शास्त्रार्थ करने। शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ, किन्तु पहले ही विद्वानों ने बात रख दी कि हमारे विद्वान् महा पंडित हैं, ये बोलते नहीं हैं अपनी बात इशारों में कहते हैं। राजकुमारी आप ही प्रश्न करो, हमारे विद्वान् को तो कोई शंका ही नहीं है।

राजकुमारी ने एक अँगुली उठायी, उसका पूछना था ब्रह्म एक है "एको ब्रह्मो द्वितीयो नास्ति।" सारा जगत एक ब्रह्ममय है दूसरा कुछ भी नहीं जैसे आकाश में चन्द्रमा एक होता है यदि नीचे हजारों जल पात्र रखें हों तो सबमें चन्द्रमा की परछाई दिखायी देती है। ऐसे ही पूरे ब्रह्माण्ड में केवल एक ही ब्रह्म है उसकी सब परछाईयाँ हैं। इस प्रकार राजकुमारी ने बात कही। इसलिये राजकुमारी ने अपनी एक अँगुली उठायी। कालीदास तो महामूर्ख उसने सोचा-ये मेरी एक आँख फोड़ेगी, बोले तो कुछ नहीं पहले ही मौन मिल चुका था, उन्होंने वहाँ से इशारा किया दो अँगुली का, तू एक फोड़ेगी मैं तेरी दोनों फोड़ दूँगा। राजकुमारी ने पूछा- आपके विद्वान् क्या कह रहे हैं- तो कहा

गया आप समझिये, आपने कहा ब्रह्म एक है हमारे विद्वान् कह रहे हैं एक ब्रह्म अकेला क्या करेगा, इस सृष्टि की रचना कहाँ से होगी गर माया साथ न हो तो। ब्रह्म के साथ माया भी है, अनादि काल से है। वह ब्रह्मा स्वयं आनंद में लीन रहता है। वह ब्रह्म स्वरूपी आत्मा निजानंद में लीन है उसे संसार की कोई चिंता नहीं, संसारी प्राणियों को माया में भटकाता रहता है और खुद निश्चिंत रहता है। यदि कहीं संसारी प्राणियों के बीच फँस जाये तो संसारी प्राणी तो उसे पकड़ लें तो उसने मायाजाल फैला दिया है, ऐसे कोई विरला व्यक्ति ही उस मायाजाल से निकल पाता है।

तो ये इन्द्रधनुष क्या है? मायाजाल है। यह मायाजाल देखने में बहुत सुंदर लगता है। राजकुमारी ने और भी प्रश्न किये। पुनः उसने 5 अंगुलियाँ दिखायीं, उसका संकेत ये था कि यह शरीर जो बना है वह पंचतत्त्व से बना है। कालीदास ने सोचा कि अब ये मानेगी नहीं, अभी तो आँख फोड़ने की बात कह रही थी, और सही है लातों के देवता बातों से नहीं मानते, ये सोचती है मैं कमजोर हूँ अब कह रही है तमाचा मारेगी क्या? अब उसने बनाया मुक्का, राजकुमारी ने पूछा- आपके महापंडित क्या कहते हैं वे विद्वान् बोले- आपने कहा- ये शरीर पाँच तत्त्वों से बना है जब ये पाँच तत्त्व बिखर जायेंगे तो आत्मा विलीन हो जायेगी।

महानुभाव! हमारी ये इन्द्रस्वरूपी आत्मा, इस शरीर के अंदर है। 5 इन्द्रियों के मध्य में पड़ी है, ये इन्द्रियाँ आत्मा को नाच नचाती रहती हैं। ये मन आत्मा से कर्मों को आमंत्रण दिलवाता है, कर्म आते चले जाते हैं और ये आत्मा उन कर्मों को नष्ट नहीं कर पाता। वह कर्म आत्मा को जकड़कर बंदी बना लेते हैं और

इन्द्रियाँ मनमानी करती रहती हैं। इसलिये उस इंद्रधनुष जैसे माया के चक्कर में नहीं पड़ना। यह संसार की जो भी वस्तु तुम्हें दिखायी दे रही है वह इन्द्रधनुष की माया है, कुछ नहीं है।

ये सप्त वर्ण जो आपको दिखाई दे रहे हैं आपको लुभा रहे हैं किन्तु वास्तविकता में ये यथार्थता नहीं है। यदि सूर्य अस्त हो जाये तो ये इन्द्रधनुष दिखायी न दे। आकाश में जो बादल रुके हैं (पानी रुका है) सूर्य की किरणें उसमें आ रही हैं इसलिये उसमें इन्द्रधनुष तुम्हें दिखायी देता है, होता नहीं। ऐसे ही संसार में आपको जो कुछ दिखायी दे रहा है, वह है नहीं पर दिखाई दे रहा है। जैसे जब पंखा चलता है तो आपको गोल सर्कल सा दिखाई देता है किन्तु वहाँ कोई गोल सर्कल है क्या? नहीं। है नहीं पर दिखता है और जो है तीन पांखुड़ी वे दिखती नहीं हैं। ऐसे ही आत्मा अदृश्य है आकाश की तरह से। आकाश में चाहे बादल आ जायें तब भी आकाश गंदा नहीं होता, आकाश में चाहे धुआँ हो जाये तब भी गंदा नहीं होता, आकाश में अग्नि की लपट जले तब भी कुछ नहीं होता, आकाश में कोई कीचड़ उछाले तब भी कुछ नहीं होता। ऐसे ही हमारी आत्मा स्वभाव से शुद्ध है किन्तु इस शुद्ध स्वभावी आत्मा में ही रागद्वेष के कारण कर्मों का संचय हो रहा है। उन कर्मों के बीच आत्मा ऐसे ढक गयी कि पूर्ण स्वभाव प्रकट नहीं हो रहा।

सूर्य जिस तरह बादलों से ढक जाये किंतु फिर भी ऊपर अहसास करा रहा है कि सूर्य तो है किन्तु जब घने बादल होते हैं, बारिश होती है तो सूर्य का अहसास नहीं होता। जब जीवन में तीव्र पापकर्म का उदय आता है तब आत्मा की शक्ति का बोध नहीं होता उस समय भूल जाते हैं। उस समय उस शरीर

को ही आत्मा मान बैठते हैं। ये भूल जाते हैं कि मैं शक्तिरूपेण परमात्मा हूँ। इस कर्म के आवरण को दूर कर दूँ तो मैं परमात्मा बन जाऊँ।

महानुभाव! उस सम्पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य से सहित ये जो इन्द्रस्वरूपी आत्मा है। तीनों लोकों में वैभव सम्पन्न इन्द्र होता है, ऐसे ही तीनों लोकों में सबसे ज्यादा शक्तिशाली, उत्तम, श्रेष्ठ आत्मा ही होती है। संसारी सभी पदार्थों में, अस्तिकायों में, सभी द्रव्यों में यदि कहीं कुछ श्रेष्ठ है तो वह आत्मा है। उसी आत्मा को शुद्ध करना है।

इन्द्रधनुष के मायने हैं कि हम अपनी शुद्ध आत्मा की परिणति तक पहुँचें। हमारी आत्मा की शुद्ध परिणति क्या है और हमारी आत्मा इस अशुद्ध दशा में भ्रमित होती क्यों चली जा रही हैं? क्यों आत्मा इस पुद्गल प्रचय का संचय कर रही है? क्यों आत्मा किसी पुद्गल से राग-द्वेष करती है? क्योंकि अभी इस आत्मा के नेत्रों पर, ज्ञान, दर्शन पर मोह की पट्टी बँधी है, मिथ्यात्व का आवरण है इसलिये ये यथार्थता को देखती नहीं। जैसे आकाश में दिखता हुआ इन्द्रधनुष आपको सत्य प्रतीत होता है, वास्तव में सत्य है नहीं, ऐसे ही संसार के पदार्थ आपके कुटुम्बीजन, स्नेहीजन, बंधु-बाँधव आपको अपने प्रतीत होते हैं, आपको अपना शरीर अपना लगता है आप भूल जाते हैं किसी भी क्षण ये शरीर के परमाणु बिखर जायेंगे, आत्मा निकल जायेगी, ये मिट्टी का शरीर मिट्टी में मिल जायेगा।

महानुभाव! कभी-कभी आपको क्षण दो क्षण के लिये ख्याल आता है, पुनः वह विचार विस्मृत हो जाता है। उस विचार

को स्थिरता प्रदान करने के लिये बार-बार चिंतन करना होता है। जैसे इन्द्रधनुष की सार्थकता को जानने के लिये आकाश को केवल उसी समय न देखो, हमेशा देखते रहो फिर लगेगा कि वह कहाँ गया, अभी तो था, कहाँ चला गया। बारिश हो गयी तो दिखाई नहीं देगा, सूर्यास्त हो गया तब भी दिखायी नहीं दे रहा क्या हो गया? सूर्य ढकता है तो इन्द्रधनुष दिखायी नहीं देता, इसका आशय है कि वह है नहीं दिख रहा था।

और जो है नहीं वह दिख रहा है उसको प्राप्त करने की इच्छा, अभीप्सा, कामना, वांछा होती है। जो है उसे व्यक्ति सोचता है, ये तो है ही और कई बार जो है उस को भूल जाता है और जो नहीं है उसके लिये तड़पता है। संसार में दुःख केवल इस बात का है, जो तुम्हारे पास नहीं है, उसे तुम प्राप्त करना चाहते हो किन्तु उसे तुम प्राप्त कर नहीं सकते, जो तुम्हारे पास है, उसे तुम भूलकर बैठे हो, यदि एक बार मन में ख्याल आ जाये, कि मेरे पास तो मेरी आत्मा का वैभव है तो फिर तुम बाहर की वस्तु पकड़ने की चेष्टा न करोगे।

महानुभाव! इन्द्रधनुष के मायने बस इतना ही समझें।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# सन्मार्ग का बीज

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

आप सभी जानते हैं संसार में कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता। कोई भी वृक्ष बिना बीज के नहीं बनता, जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य होता है। कारण के मुख्य रूप से दो भेद हैं एक उपादान कारण, दूसरा निमित्त कारण। उपादान वो होता है जिसमें कार्य होने की क्षमता पायी जाती है और निमित्त कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ होता है। बिना निमित्त के कोई भी उपादान नैमित्तिक कार्य को करने में समर्थ नहीं है। दोनों ही कारण महत्त्वपूर्ण हैं। उपादान का सीधा-सीधा प्रभाव पड़ता है, निमित्त का प्रभाव परोक्ष में पड़ता है।

जैसा उपादान है कार्य वैसा ही दिखाई देता है। जैसे कुम्भकार को कोई कलश बनाना है, तो वह मृतिका के माध्यम से कलश बनाता है मिट्टी जैसी होती है कलश वैसा ही बन जाता है। यदि मिट्टी का रंग काला है, चिकनी मिट्टी है तो बना हुआ कलश उसी प्रकार का दिखायी देगा। यदि वर्ण पीला है तो कलश पीला दिखेगा, निमित्त कुंभकार है, जिसे वह सुंदर रूप दे सकता है, छोटा-बड़ा बना सकता है उस पर अन्य-अन्य आकृतियाँ भी उकेर सकता है। जैसे कोई भी माँ भोजन बनाती है तो आटा जैसा होगा रोटी वैसी ही बनेगी। कुशल गृहिणी रोटी में विशेषता ला सकती है रोटी छोटी बनाकर या बड़ी, पतली बनाकर या मोटी। किन्तु जैसा आटा है रोटी उसी की बनेगी। सब्जी वही है चाहे कोई उसे बहुत स्वादिष्ट बनाये, चाहे कोई सामान्य या कोई सिर्फ उबालकर ही रख दे,

यह तो गृहिणी के ऊपर निर्भर है कि वह सब्जी कैसे बनाती है, किन्तु सब्जी जो है वह वही रहेगी।

महानुभाव! ऐसे ही हमारे जीवन में कुछ उपादान शक्ति भी है कुछ नैमित्तिक शक्ति भी है। हमारा जीवन दूसरों के लिये निमित्त बन सकता है और हमारा जीवन हमारे लिये उपादान होता है। हम अपने उपादान को जाग्रत करके विभिन्न प्रकार से अपने जीवन को सुंदर, सरल, लोकप्रिय, सुखद और शांतिमय भी बना सकते हैं और इसके विपरीत भी। यदि हम अशुभ निमित्तों का सम्मेलन करें, यदि हम अशुभ निमित्त से अपनी आत्मा की क्रियाशीलता को वृद्धिंगत करें तब नि:संदेह हमारी आत्मा में अशुभ वर्गणायें ही संग्रहीत होंगी, अशुभ कर्मों का आश्रव होगा, पाप का ही बंध होगा और यदि हम शुभ निमित्तों का संकलन व उपयोग करते हैं, शुभ निमित्तों के माध्यम से अपनी आत्मा को सक्रिय बनाते हैं, शुभ निमित्तों की परछाई यदि हमारी आत्मा पर आती है, तब नि:संदेह हमारी आत्मा की द्युति-कांति-चमक भी वैसी ही हो जाती है।

जैसे सामने की दीवार सफेद है और दूसरी तरफ लाल कपड़े सूख रहे हैं सूर्य का प्रकाश लाल कपड़ों पर पड़ रहा है, उसका रिफ्लेक्शन दीवार पर आता है तो दीवार पर लालिमा दिखाई देती है, यदि कपड़ा पीला हो तो दीवार पीली दिखायी देती है, यदि हरा है तो हरितमा दिखाई देती है और श्याम है तो दीवार पर आभा श्याम दिखाई देती है। जैसे उस वस्त्र की आभा दीवार पर दिखाई देती है ऐसे ही विभिन्न निमित्तों की आभा हमारी आत्मा पर दिखाई देती है।

हम जिनेन्द्र भगवान् के सामने बैठते हैं तो जिनसूर्य जिसमें

वीतरागता निहित है, जिसमें सर्वज्ञता निहित है, जिसमें अनंतशांति और सुख निहित है उसकी आभा, उसकी झलक, उसकी कांति उसकी द्युति जब निकलती है बाहर तो हमें इस प्रकार के गुणों से आप्लावित करती है, सिंचित करती है वह हमारी आत्मा को भी अभिसिंचित करती है।

महानुभाव! इसीलिये जिनशासन में कहा है, इस दुःषमा काल में, इस हुण्डावसर्पिणी पंचमकाल में जिनेन्द्र देव, जिनवाणी और निर्ग्रंथ जिनगुरुओं के अभाव में धर्मध्यान को चित्त में रोका नहीं जा सकता। इस काल में चाहे श्रावक हो चाहे श्रमण हों यदि अपने चित्त में धर्मध्यान की स्थिरता चाहता है तो आश्रय बनायेगा देव-शास्त्र-गुरु को। देव-शास्त्र-गुरु के अंदर से निकली हुयी धर्म किरण ही हमारे चित्त में से अंधकार को तिरोहित करके धर्म का प्रकाश करने वाली है, इक नव उजास देने वाली है। यदि यह आधार नहीं मिला तो चेतना में धर्म टिक नहीं सकेगा। जैसे सछिद्र अंजुलि में जल नहीं टिकता है, सछिद्र बर्तन में कोई भी तरल पदार्थ नहीं ठहरता है उसी प्रकार हमारा मन जब सछिद्र हो जाता है, कषाय के माध्यम से खण्डित हो जाता है, विषयों के माध्यम से हमारा चित्त जर्जर हो जाता है, जब पापों के माध्यम से हमारा चित्त छलनी जैसा हो जाता है। तब उस चित्त में धर्मध्यान के अमृत का रुक (रोक) पाना दुर्लभ ही नहीं असंभव हो जाता है।

महानुभाव! हम अपने चित्त की भूमि पर सिद्धत्व के बीज बोयें। यदि किसी किसान के पास बीज तो बहुत सारा है किन्तु खेत नहीं है तो बिना खेत के मात्र बीज से कितनी फसल प्राप्त की जा सकती है? महाराज जी! हमारे पास जमीन तो दो बीघा

भी नहीं है पर हमारे पास बीज इतना रखा है कि 200 बीघा भी बो दें। यदि 200 बीघा में बोने लायक बीज तुम्हारे पास रखा है किन्तु खेत दो बीघा भी नहीं है तो ऐसे बीज से फल की प्राप्ति नहीं होती। और कोई कहे महाराज हमारे पास खेत तो बहुत है 100-500 एकड़ जमीन है किन्तु बोने के लिये बीज नहीं है तब भी बिना बीज के खेत में फसल नहीं उगायी जा सकती है, तो दो शर्त अनिवार्य हैं खेत भी होना जरूरी है और बीज भी होना जरूरी है। किन्तु खेत यदि उपजाऊ नहीं है, बंजर भूमि है उसमें कंकड-पत्थर पड़े हैं, झाड़ झंकड़ खड़े हैं, छोटी-छोटी पहाड़ी हैं तो इन दोनों के माध्यम से भी फसल प्राप्त नहीं हो पायेगी। भूमि 2-4 कि.मी. हो पर पथरीली भूमि है, मिट्टी उसमें नहीं है और जो है भी वह कंकड़ पत्थरों की रगड़ से उत्पन्न हुयी बालूई मिट्टी जैसी है उसमें बीज बोने पर, पानी सींचने पर भी अंकुरित नहीं होता क्योंकि जब पानी बालू में डालते हैं तो पानी बालू में से निकल जाता है और बीज फूल नहीं पाता इसलिये अंकुर पैदा नहीं होता।

भूमि बहुत बड़ी हो पर उपजाऊ न हो तो बेकार है। अभव्य प्राणी के चित्त की भूमि तो बहुत बड़ी है, उसका आकार भव्य जीव के चित्त के बराबर ही है, अभव्य जीव की आत्मा में भी असंख्यात प्रदेश होते हैं, इतने ही भव्य जीव की आत्मा में होते हैं। एक प्रदेश भी कम या ज्यादा नहीं होता, प्रदेश सब समान होते हैं किन्तु भव्य जीव के चित्त की भूमि उपजाऊ होती है, अभव्यजीव के चित्त की भूमि अन-उपजाऊ होती है, कंकड़-पत्थरों से सहित होती है उसमें कितना भी धर्म का बीज बोओ किन्तु वह अंकुरित नहीं होता ऐसा लगता है जैसे पत्थर पर पानी डाल

दिया, पानी चाहे एक बार डाल लो या सौ बार पत्थर मुलायम नहीं होगा। यदि कपास में चार बूँद पानी की गिर जायें, तो कपास पानी की बूँद को जमीन तक न आने देगी वहीं सोख लेगी।

पहले बचपन में एक फोम आती थी, जब स्याही फैल जाती थी तो वह स्याही सोख लेती थी, ऐसे ही जिस भव्य जीव का चित्त स्याही सोखा की तरह से या कपास की तरह से होता है तो धर्म का एक शब्द भी निकलता है तो उसे तुरंत सोख लेता है प्यासे चातक की तरह से। जैसे दूध में पड़ी हुयी नींबू के रस की एक बूँद भी अपना असर दिखाये बिना रहती नहीं, दूध में पड़े चार शक्कर के दाने भी अपना असर दिखाये बिना रहते नहीं, ऐसे ही आसन्न भव्य के चित्त में जिनवाणी के दो शब्द भी पड़ जायें तो तुरंत ही वह भावुक हो जाता है कई बार तो सुनते-सुनते उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है। कई बार किसी दृश्य को देखकर के फबक-फबक के, फूट-फूट के रोने लगता है कई बार इतना भावुक हो जाता है कि दृश्य को देखकर के, शब्दों को सुनकर के उसका चित्त इतना द्रवित हो जाता है कि संभल नहीं पाता। तो निकट भव्य, आसन्न भव्य धर्म के शब्दों को ग्रहण करता है।

एक श्रोता होता है मिट्टी की तरह से, मिट्टी में जब पानी गिरता है 1-1 बूँद गिरता है तो मिट्टी पानी को पीती चली जाती है और फूल जाती है और पत्थर पर पानी की बूँद चाहे एक-एक गिरे और चाहे मूसलाधार वर्षा हो पत्थर पिघलता नहीं, पत्थर फूलता नहीं, पत्थर में उपजाऊ पना नहीं आ सकता। जो उपजाऊपना मिट्टी में आ सकता है वह पत्थर में नहीं आ सकता। अभव्य जीव चाहे कितनी बार भी सर्वज्ञ देव की दिव्य

ध्वनि सुने, कितनी बार भी श्रुतकेवलियों का उपदेश सुने, कितनी बार भी गणधर परमेष्ठी से शंका-समाधान तत्त्वचर्चा करे, कितनी बार भी मुनियों के उपदेश को सुनता जाये किंतु फिर भी वह अभव्य हृदय, धर्म के अनुरूप नहीं बनता। नदी के किनारे पर लगी हुयी वह चट्टान दसों-बीसों हजारों साल से लगी है किन्तु चट्टान कठोर की कठोर है, उसका चित्त द्रवित नहीं हुआ, उसमें कभी कोई व्यक्ति बीज बोकर फसल नहीं उगा सकता, किन्तु उसी नदी किनारे से लगा हुआ किसी का खेत कोई उसमें बीज बोता है तो सिंचाई की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, वहाँ मिट्टी में नमी रहती है, नदी की धारा बहती है। जल के श्रोत वहाँ तक जाते हैं और स्वतः फसल बहुत अच्छी आती है।

महानुभाव! भव्य और अभव्य में इतना ही अंतर है भव्य जीव जब भी जिनधर्म के शब्दों को सुनता है तो उसके अंतरंग में परिणमन होने लगता है, अभव्य सुनता है तो वह दोनों कानों का प्रयोग करता है, एक से सुनता है और दूसरे से निकाल देता है, अंदर नहीं ले जाता।

किसी राजा के दरबार में एक शिल्पकार तीन मूर्ति लेकर के आया उसने तीनों मूर्तियों को सामने रखा, राजा ने पूछा- इनका मूल्य क्या है? उस शिल्पकार ने कहा- इनका मूल्य अलग-अलग है। राजा ने कहा जब तीनों मूर्ति देखने में एक जैसी लग रही हैं तो मूल्य अलग-अलग क्यों है? वह बोला- महाराज! इसमें एक मूर्ति का मूल्य सिर्फ दो कोड़ी, दूसरी का मूल्य 1 लाख रुपया और तीसरा मूर्ति की तो न्यौछावर राशि दी जा सकती है, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता, उसकी न्यौछावर राशि 1 करोड़ से कम नहीं उससे ज्यादा ही है। राजा ने पूछा- ऐसा इनमें

क्या है? वह बोला- राजन्! आपकी सभा में बड़े-बड़े पुरोहित, विद्वान्, मंत्री, पंडित बहुत हैं आप उनसे पूछें, यदि किसी ने सही-सही बता दिया तो तीनों मूर्तियों को बिना मूल्य लिये आपको ज्यों की त्यों दे दूँगा।

राजा ने सभा के सभी लोगों से कहा- देखो और बताओ क्या विशेषता है इन मूर्तियों में। सभी लोग मूर्तियों को देखने लगे। एक वृद्ध मंत्री जो सेवानिवृत्त हो चुका था, वह सामने आता है, कहता है महाराज! यदि आपकी अनुमति हो तो मैं देखूँ। राजा ने कहा- मंत्रिवर! देखने में तो कोई हर्ज नहीं किंतु आप स्वयं सोच लें आप को आँखों से भी कम दिखायी देता है और आप वयोवृद्ध हो गये हैं आपके हाथ-पैर अब काँपने लगे हैं, फिर भी आपका मन है तो देख लो। वह बोला- महाराज! मेरा शरीर अवश्य वृद्ध हुआ है किन्तु मेरी मनःस्थिति अभी वृद्ध और जर्जर नहीं हुयी, मेरा मन और मेरे ज्ञान का क्षयोपशम अभी भी यौवन से युक्त है। महाराज! शरीर का मदभरा यौवन तो व्यक्ति को दुःखों के गर्त में धकेल सकता है किन्तु बुद्धि का मतवाला यौवन गर्त में पड़े हजारों व्यक्तियों को निकालने में समर्थ होता है। बुद्धि का सही उपयोग करके व्यक्ति सुपथ का राही बन जाता है और बुद्धि का दुरुपयोग करके व्यक्ति कुमार्गगामी हो जाता है।

मंत्री मूर्ति के समीप पहुँचता है। पहली मूर्ति को उठाकर देखा, पुनः दूसरी-तीसरी मूर्ति को भी उठाकर देखा, वजन में ज्यादा अंतर तो नहीं था, कोई मामूली सा अंतर लगा। मूर्ति को सर्वांग से पूर्णरूपेण निहारा और कहा इसमें रहस्य तो है। पुनः एक धागा मँगाया और धागा लेकर उसने एक मूर्ति के कान में

डाला, वह धागा डालता गया और दूसरे कान से धागा निकलकर आता रहा, दूसरी मूर्ति में धागा डाला तो मुख में से निकलकर बाहर आ गया और तीसरी मूर्ति में धागा डाला, वह न कान से निकला, न मुँह से निकला अंदर चला गया।

संसार में भी तीन प्रकार के श्रोता होते हैं एक वो जो पहली मूर्ति की भाँति जो कुछ सुना वह दूसरे कान से ज्यों का त्यों निकल गया। बस बाई पास, आउटर से ही निकल गया अंदर की बस्ती में शब्दों ने प्रवेश ही नहीं किया। दूसरा श्रोता जो 'एल' शेप वाला होता है अर्थात् जो कुछ सुना वह मुख से निकाल दिया और तीसरा होता है वह तृतीय मूर्ति की तरह 'वी' शेप चाहे किसी भी कान से सुना बात अंदर ही गयी। जिस मूर्ति में से धागा एक कान से दूसरे कान में निकल गया उस मूर्ति की कीमत दो कोड़ी की है, ऐसे इंसान भी दो कोड़ी से ज्यादा के नहीं होते, जो सबको बाई पास कर देते हैं। दूसरे प्रकार के इंसान वे होते हैं जो सुनते हैं पर अंदर नहीं ले जाते मुख से निकाल देते हैं। तीसरे श्रोता वे हैं जो सुनते हैं तो सुनकर सीधा अंदर ले जाते हैं। उनके पास विवेक है कि क्या ग्रहण करना है, क्या छोड़ना है, किसको क्या कहना है।

शब्दों की बहुत बड़ी शक्ति होती है, जो शब्द गुणता से रहित हैं निःसार हैं उन्हें छिलके की तरह से बाहर फेंक दो, जिन शब्दों में कुछ सार है, पुष्पों की महक है उन्हें मुख से बाहर निकाल दो जिससे सामने वाले की नासिका तृप्त हो जाये और कर्णांजलि से सामने वाला पान (सुने) करे तो संतुष्टि को प्राप्त हो और जो मर्म सहित जैसे दूध का सार घी, ऐसे घी की तरह सार को अपने अंदर छिपा कर रखें, जिसका अनुभव

क्षण-प्रतिक्षण करता रहे वह शब्द आत्मा को आनंदित करने वाले होते हैं। महाराज! पहली मूर्ति दो कोड़ी की मूर्ख की तरह दूसरी मूर्ति जिसमें विवेक है उसकी कीमत एक लाख रु. किसी विद्वान् की तरह किंतु तीसरी मूर्ति तो योगी की तरह है जो सब संसार की सुनता है, सुनकर ग्रहण करता है, उसके उपरांत क्या छोड़ना है, क्या बोलना है, क्या ग्रहण करना है इन सबको बुद्धिपूर्वक विचार करके अंगीकार करता है।

इसी प्रकार श्रोता भी होते हैं जो बालू की तरह से होते हैं उन्हें तो असर ही नहीं होता, कितना भी पानी मिले, जब तक पानी है तब तक ग्रहण करेंगे, बालू गीली तो होगी किन्तु मुलायम नहीं। थोड़ी देर बाद धूप लगते ही बालू सूख जायेगी। दूसरे प्रकार के श्रोता वे हैं जो कपास की तरह होते हैं रुई में पानी गिरता है। रुई पानी को सोख लेती है किन्तु थोड़ी देर बाद पानी बूँद-बूँद करके बालू में से नीचे गिर जाता है, बालू सूख जाती है, ऐसे ही कपास भी बहुत जल्दी सूख जाती है। वे श्रोता ऐसे होते हैं जो सुनते-सुनते बड़े भावुक होते हैं, सुनते-सुनते रोने लगते हैं किन्तु उन पर उनका असर तब तक होता है जब तक वे सभा में होते हैं बाहर जाकर वह असर नहीं रहता। सभा में बैठने पर चित्त मुलायम रहता है, बाहर जाते ही शुष्क हो जाता है। तीसरे श्रोता वे होते हैं जो एक-एक बूँद को ग्रहण करके जल्दी नहीं भूलते ग्रहण करते जाते हैं और फूल जाते हैं पुनः घंटे-चार घंटे-बीस या इससे ज्यादा समय तक अब मिट्टी एक बार फूल गयी तो जल्दी सूखती नहीं, उसके अंदर नमी रहती है, वही श्रोता अपना कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

महानुभाव! सिद्धत्व का बीज क्या है? तो चित्त की भूमि पर

बोया गया जिनवचन ही सिद्धत्व का बीज है। जिनवचन ही परम औषधि है, जिनवचन ही परम रसायन है, जिस परम रसायन को आत्मा के धर्म में मिलाने से परमात्मा की दशा में प्रस्तुत हो जाता है। इस औषधि को बहिरात्मा रूपी रोगी स्वीकारता है तो वह भी परमात्मा बन जाता है। जिनवचन से बढ़कर के संसार में सिद्धत्व का बीज और कोई नहीं है। वह जिनवचन जब चित्त की भूमि तक पहुँच जाता है उस भूमि में जिसमें झाड़-झंकड़ नहीं हैं, कंकड़-पत्थर नहीं हैं, जिसकी मिट्टी (भूमि) उपजाऊ है तब संभावना है वह जिनवचन जिनत्व को पैदा कर देगा। निजत्व में जिनत्व को पैदा करने वाला जिनवचन है, जिन मुद्रा है। जिनवचन का चिंतन, जिनमुद्रा का ध्यान और जिनमुद्रा की पूजा-भक्ति वंदना निजत्व में जिनत्व को पैदा करने वाली होती है। किन्तु ऐसे नहीं? आप कहो, महाराज जी हमने अपनी चित्त की भूमि पर जिनवचन का बीज तो बो दिया, अब क्या चैन से घर में सोयें? नहीं। यदि चैन से घर में सोओगे तो फिर जिनत्व प्रकट नहीं होगा।

जिनवचनों के अंदर जाने से, क्या होगा? तुम्हारी जो आत्मा है, उस आत्मा की भूमि में, आत्मा ही बीज बन रहा है। अभी तो जिन वचन गया और आत्मा का स्वाभाविक बीज वह अंदर जाने से फूलना प्रारंभ होगा, जब तक बीज फूलता नहीं है तब तक अंकुर पैदा नहीं होता जब फूलता है तब अंकुर पैदा होने की सामर्थ्य आती है और बीज को चित्त की भूमि के ऊपर नहीं रखना, जिससे कोई व्यक्ति देख ले कि इसके पास तो सिद्धत्व का, जिनत्व का बीज है, जिनवचन है। अगर जिनवाणी साथ लेकर चल रहा है तो भी गारण्टी नहीं है कि जिनत्व पैदा हो ही जाये। बीज को भूमि के अंदर दबाया जाता है वह भी नम मिट्टी

में, सूखी मिट्टी में नहीं। उसके उपरांत उसमें जल सिंचन किया जाता है।

तत्त्वचिंतन का जल सिंचन जरूरी है, उसे फिर संयम की धूप भी लगाना चाहिये या संयम की शीतल पवन भी मिलना चाहिये और तप का दिव्य प्रकाश मिलना चाहिये तभी वह अंकुर अपना पौधा बनाने में समर्थ होगा। वह अंकुर बीज में से निकलता है उसके दो फलक होते हैं, एक हिस्सा नीचे की ओर जाता है दूसरा हिस्सा ऊपर की ओर जाता है। देवदारु के पेड़ लगभग 400-500 फीट तक ऊँचे हो जाते हैं किन्तु एक व्यक्ति यात्रा के लिए जापान में गया वहाँ उसने देवदारु के पेड़ 4-5 फीट के देखे, पूछा- ये पेड़ कितने पुराने हैं, लोगों ने कहा ये पेड़ तो 50 साल पुराने हो गये, वह सोचने लगा, 50 साल पुराना देवदारु का पेड़ 4-5 फीट ही ऊँचा हुआ ऐसा कैसे? उस जापान के बागवान ने बताया- ये पेड़ गमले में लगे हैं, गमले में मिट्टी भरी है, नीचे गमले में छेद भी है, लोहे का जाल लगा है तो जड़े नीचे निकल कर जाती है जैसे ही जड़े नीचे जाती हैं उन्हें काट दिया जाता है। तो पेड़ सूखा तो नहीं किन्तु आगे भी नहीं बढ़ा। ये जो तुम्हें पेड़ दिखायी दे रहे हैं, जो आकाश को छू रहे हैं सुमेरु पर्वत की तरह खड़े हैं ध्यान रखना ये जमीन में उतने ही धँसे हैं, जो जितना नीचे जाता है वो उतना उठता चला जाता है। यह ऊपर बढ़ने का सूत्र है जो व्यक्ति नीचे जाने से कतराता है, जो झुकने से अखराता है, विनम्रवृत्ति से कतराता है वह अपनी जड़ों को खाद और जल नहीं दे सकता और जब खाद व जल नहीं मिलेगा तो उसकी वृद्धि रुक जायेगी। यदि जड़े कटना प्रारंभ हो गयीं तो, जड़े मोटी तो हो जायेंगी किन्तु

सूक्ष्म नसें होती हैं जड़ों का जाल होता है उनसे पानी का अवशोषण होता रहता है, उससे खाद दिया जाता है, वे यदि काटते चले गये तो पुनः वृक्ष की वृद्धि कैसे होगी, स्थिति भी ज्यादा समय तक नहीं रहेगी शनैः-शनैः वृक्ष सूख ही जायेगा।

महानुभाव! ऐसे ही जब चित्त की भूमि पर धर्म का बीज अंकुरित होता है तब वह वृक्ष आगे बढ़ता चला जाता है। भक्ति जब बढ़ती है, वैराग्य बढ़ता है, ज्ञान बढ़ता है, संयम की ओर कदम बढ़ते हैं, तप उमड़ता है, धर्मध्यान बढ़ने लगता है जब सब बढ़ता जाता है तब बढ़ते-बढ़ते उसी वृक्ष पर कोंपलें आती हैं, नूतन-नूतन पल्लव आते हैं, कलियाँ खिलती हैं, पुष्प बनते हैं, उसकी महक, उसका सौरभ व पराग आस-पास के वातावरण को सुवासित कर देता है और उसी वृक्ष पर फिर सुमधुर आँखों को तृप्ति देने वाले, मन को संतुष्टि देने वाले जिह्वा को भी पूर्ण तृप्त करने वाले फल लगते हैं जिसे प्राप्त कर किसी भी पथिक की थकान मिट जाती है।

हमारा बीज या तो हमने भूमि में डाला ही नहीं है, डाला था तो शायद वह सही का बीज नहीं था प्लास्टिक का था। प्लास्टिक के बीज से असली के वृक्ष पैदा नहीं होंगे। या हमारी भूमि ही अच्छी नहीं थी, वह पथरीली भूमि थी, या किसी मानचित्र में बनी हुयी भूमि थी, उसमें बीज वपन कर दिया या बीज बोकर के हम कहीं जाकर सो गये होंगे, बीज की सुध नहीं ली होगी या फिर भूमि में नमी नहीं थी, शुष्क मिट्टी में डाल दिया या बीज को चित्त की भूमि के ऊपर रख दिया, वह दूसरे को दिख रहा है परंतु बीज नमी तक नहीं पहुँच रहा अर्थात् दाब कर नहीं रखा। दाब कर रखते तो उसमें आर्द्रता आती वह

बीज फूलता चला जाता, और बीज में अंकुर देने की सामर्थ्य आ जाती। हम भी कई बार जिनवचन के बीज को अपने मुख में तो रखते हैं पर चित्त में नहीं रखते। जो भी जिनवचन सुना उसे दूसरों को सुना तो देते हैं या फिर सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं। यदि चित्त की भूमि तक नीचे जाते और गहरे, बहुत गहरे में ले जाओ उन जिनवचन का चमत्कार ऐसा होता है कि वह निज को जिन बना देते हैं यदि अंदर चला गया तो, और अंदर नहीं गया फिर तो कितना भी जिनवचन हो जैसे- दूध के डिब्बे पर कितने ही शक्कर के बोरे रख दो उससे क्या होने वाला है, किसी अभव्य व्यक्ति को द्वादशांग वाणी बाँधकर उसके साथ रख दो, इससे क्या फर्क पड़ता है, जब तक कि अंदर में जिनवचन न घुलें मिलें। दो शब्द भी जिनवचन के हम अंदर उतार लेंगे तो जिनवचन हमारे वस्त्रों को उतार देंगे, हमारे विकारों को उतार देंगे, कषायों की पोशाक को उतार देंगे, और इतना ही नहीं वे जिनवचन हमें संसार सागर से पार उतार देंगे।

महानुभाव! तो हम क्या करें? जिनवचनों को केवल कान तक न रखें, जिनवचनों को अंदर में ले जायें, ध्यान रखें। जरूरी नहीं है आप प्रवचन में प्रतिदिन आयें, डेढ़ घंटा बैठें जरूरी नहीं, 1/2 घंटा बैठें, 1 मिनट भी बैठना आपके लिये सफल और सार्थक हो सकता है यदि एक शब्द भी सुना और आप उसे अंदर ले गये, उसका चिंतन मंथन करते रहे तो। जैसे दही को मथने से मक्खन निकलकर आता है वैसे ही वह जिन वचन आपके अंदर चला गया और चित्त की मथानी चल गयी तो आपकी चर्या और आपकी चर्चा दोनों बदल जायेंगी। फिर आपके श्रीमुख से निकलने वाली चर्चा अन्य प्रकार की ही

होगी, आपकी चर्या अन्य प्रकार की होगी। आपकी वृत्ति-प्रवृत्ति बदल जायेगी, आप प्रकृति के समीप पहुँच जायेंगे, इतना ही नहीं आप प्रकृतिमय बन जायेंगे।

महानुभाव! इसलिये उस चित्त की भूमि पर बीज बोना जरूरी है, वह जिनवचन का बीज हमारी चित्त की भूमि पर पहुँच जाये, चाहे वह बीज कैसे भी रंग का हो, जब दसों दिशाओं से देखते हैं बीज को तो वह बीज अलग-अलग प्रकार का दिखता है, कहीं से चोकोर आकार दिखता है तो कहीं से गोल तो कहीं से लम्बा सा दिखता है, कहीं से कालिमा दिखती है तो कहीं से लालिमा वह बीज दशों दिशाओं से देखने पर दस प्रकार का दिखाई देगा किन्तु फिर भी वह बीज एक है। दस बीज नहीं हैं, बीज एक है हमारे देखने का तरीका अलग-अलग है। कोई ऐसा पिरामिड आपके पास हो जिस पिरामिड के साइड से आठ पहलू हों ऊपर से व नीचे से भी ऐसे 10 और दसों फलक समान हैं। माना दसों फलक "6X6" के हैं, ऊँचे भी उतने ही हों और दसों के रंग अलग-अलग हैं या दशांगी धूप की तरह दस वस्तुयें हैं। वह दशांगी धूप भी तब बनती है जब दसों वस्तुयें मिक्स की जाती हैं एक को दंशागी धूप नहीं कहते। दस एकमेक हो गये। उस पिरामिड में दसों साइड से अपना चेहरा देखा तो दसों में चेहरा तो वही दिखा जो आपका है।

हम समझते हैं वह बीज दस प्रकार की आकृति लेकर के हमारे सामने हर वर्ष प्रस्तुत होता है और एक बार नहीं वर्ष में तीन बार आता है। तुम जिस प्रकार की आकृति से पहचान सकते हो वह आकृति भी आपके सामने आती है, दस से ग्यारहवीं आकृति नहीं, दस में ही सभी आकृतियाँ व विशेषतायें समाहित

हैं। किन्तु हर व्यक्ति को उसकी पहचान नहीं है, वह दिखती है और लुप्त हो जाती है।

महानुभाव! ये दस आकृतियाँ कुछ और नहीं हमारी आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि है, पगडंडी है सीढ़ियाँ हैं जिन्हें कहते हैं "दस लक्षण धर्म"। ये दस लक्षण धर्म मिलाकर के एक ही बीज है, इसे चित्त की भूमि पर बोते हैं तथा इसमें से निजत्व और निजत्व में से जिनत्व पैदा होता है और जिनत्व की पूर्णता ही सिद्धत्व है। वही बीज अंकुरित होता है उसे पहले बीज कहते हैं फिर अंकुर कहते हैं, फिर पौधा कहते हैं, फिर छोटा सा वृक्ष कहते हैं, फिर वही बड़ा वृक्ष कहलाता है। ऐसे ही वह बीज जब वृद्धि को प्राप्त होता जाता है तो उसे ही परमात्मा कहते हैं, सिद्धत्व कहते हैं, उसे निकल आत्मा, मुक्त आत्मा, शुद्धात्मा कहते हैं वह इस आत्मा की पूर्णता हैं, स्वभाव की पूर्णता है।

एक दिन में कोई भी बीज अपना फल नहीं दे देता, उसकी इंतजारी भी करनी पड़ती है, कोई-कोई वृक्ष कुछ दिनों बाद अपना फल देना शुरु करते हैं, कोई-कोई वृक्ष कुछ महीनों बाद फल देते हैं, कोई-कोई वृक्ष को सालों लग जाते हैं और कोई-कोई वृक्ष कई भव निकल जाते हैं तब अपना फल देते हैं। मारीची की आत्मा में पड़ा हुआ तीर्थंकर की वाणी का वह शब्द रूपी बीज जो हवा के झोंके से मिट्टी में तो गया, सूखा पड़ा रहा वहाँ असंख्यात भव निकल गये, पूरा चौथाकाल निकल गया, जब समुचित वातावरण प्राप्त हुआ तब वही बीज अंकुरित होकर के तीर्थंकर महावीर के रूप में फलित हुआ।

वह खदिरसाल भील जिसने कौए के माँस का त्याग किया,

अस्वस्थ होने पर भी औषधि रूप से भी उस माँस को ग्रहण नहीं किया। उसके निकटवर्ती मित्रों ने उसे बहुत समझाया, पर वह नहीं माना। पुनः उसका साला शूरसेन उसे समझाने आता है, उसने समझाया वह तब भी नहीं माना। शूरसेन ने उसे मार्ग में आते समय का पूरा वृत्तांत बताया कि एक देवी मार्ग में रो रही थी, मैंने उससे पूछा क्यों रोती हो? तो उसने कहा- तुम जिसे कौए का माँस खिलाने जा रहे हो वह यदि माँस नहीं खाता है तो संभावना है देव आयु बाँधकर मेरा पति हो सकता है, माँस खिला दिया तो प्रतिज्ञा भंग करने से वह नरकायु का बंधक भी हो सकता है।

यह सुनकर के खदिरसाल ने सम्पूर्ण माँस का त्याग कर दिया, अणुव्रतों को स्वीकार किया और मरणकर स्वर्ग में जाकर देव हो गया। शूरसेन जब अंतिम संस्कार कर अपने घर जाने लगा तो मार्ग में पुनः देवी रोती दिखाई दी, शूरसेन ने पूछा- अब क्या हुआ वह देवी बोली आपने उन्हें मार्ग का सारा वृत्तांत सुना दिया इसलिये उन्होंने सम्पूर्ण माँस का त्याग कर दिया, उनकी धर्म के प्रति निष्ठा बढ़ गयी व्रतों को स्वीकार कर लिया और वह स्वर्ग में वैमानिक देव बन गया। वही खदिरसाल भील जो नित्य माँस खाने वाला, शिकार करने वाला जब स्वर्ग में देव हो सकता है वहाँ से आकर वह भील, राजा श्रेणिक हो सकता है, वही भील राजा श्रेणिक की पर्याय में भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में 30 वर्ष तक लगातार गया उनसे 60,000 प्रश्न पूछे किन्तु वहाँ पर भी कल्याण नहीं हुआ।

पूर्व के संस्कारवशात् मुनि महाराज पर एक दिन उपसर्ग कर दिया था, मरा सर्प अपने तीर से उठाकर उनके गले में डाल दिया जिससे उस समय नरकायु का बंध कर लिया। तीस साल तक

तीर्थंकर महावीर की भक्ति की, उनके ग्यारह गणधरों की भक्ति की और श्रुतकेवली केवली मुनियों की भक्ति की। एक मुनि पर उपसर्ग किया, हजारों मुनि की भक्ति की 30 वर्ष तक, उपसर्ग में 30 मिनट भी नहीं लगे और भक्ति तीस साल तक की तब भी तीस मिनट में बाँधा हुआ नरकायु का बंध छूट नहीं पाया, नरक जाना ही पड़ा। तो क्या भक्ति करना बेकार गया? बेकार नहीं गया भक्ति करने से वह 33 सागर की नरकायु घट कर एक सागर भी नहीं, पल्य भी नहीं, कोटि पूर्व वगैरह भी नहीं मात्र 84,000 वर्ष की रह गयी। भक्ति से इतना कम तो हो गया पर बंध एक बार हो गया तो छूटता नहीं। एक मुनि पर उपसर्ग करने पर बाँधा हुआ पाप सौ केवलियों की पूजा से भी धुल नहीं पाता।

महानुभाव! केवल पाप करने वाला ही पापी नहीं होता है। अनुमोदक भी पापी होता है। आहार देने वाला पुण्य कमाता है, देखने वाले भी पुण्य कमाते हैं। ऐसे ही किसी भगवान् की निंदा करने वाला, किसी शास्त्र की निंदा करने वाला, धर्म की निंदा करने वाला, निर्ग्रंथ गुरुओं की निंदा करने वाला जो अपने मुँह से शब्द कर रहा हो, हँसी में चाहे कौतुक में, चाहे जान के कह रहा है और सुनने वाले बड़ी ध्यान से उसे सुन रहे हैं तो ये नहीं सोचना कि वे बच गये, वे सब भी अनुमोदक हैं, वे भी उसी पाप से बंध जायेंगे। जैसे श्रीकंठ राजा ने मुनिमहाराज को देखकर कह दिया, ऐसा लगता है कोई कुष्ट रोगी है जो पहाड़ पर खड़े होकर साधना कर रहे हैं। पसीना बह रहा था, धूल चिपक रही थी तो ऐसा लगा रहा था मिट्टी और पसीना मिलकर के पस बह रहा हो, कुष्ट बह रहा हो तो कुष्ट रोगी

जैसे दिख रहे हैं। 700 सैनिकों ने ताली बजायी तो राजा समेत वे 700 सैनिक भी अगले भव में कुष्ट रोगी हुये, उन्होंने निंदा नहीं की थी अनुमोदना की थी। श्रीकंठ राजा ने मुनिराज को भांड कहा और मुनिराज को गड्ढे में धक्का देकर गिराया तो उसका फल यह हुआ कि श्रीपाल भी कुष्ट रोगी हुआ व उसको भी समुद्र में गिराया गया। पश्चात् मुनिराज को गड्ढे से निकाला, प्रायश्चित किया, क्षमा माँगी तो वे भी समुद्र से निकल आये।

महानुभाव! कर्म सिद्धान्त शाश्वत है, अचूक है, निष्पक्ष है, सबसे ज्यादा न्यायप्रिय है। जिसने बाँधा है वह उस कर्म का फल वैसे ही भोगता है, विश्व की कोई भी शक्ति उसे अन्यरूप करने में समर्थ नहीं है। जब तक हम उसे अन्य रूप न करना चाहें तो। महानुभाव! सिद्धत्व का बीज जिनवचन है, धर्म है जिसे हमें चित्त की भूमि पर बोना है। अपने चित्त की भूमि पर बोया हुआ बीज हमें ही फल देगा, दूसरे को नहीं। जैसे पुष्प उस वृक्ष का है, फल उस वृक्ष का है उसका फल तो सामने वाला भी ले सकता है, किन्तु ये फल ऐसा है जिसका फल स्वयं को ही मिलेगा। हो सकता है तुम्हारे खेत में बोयी हुयी फसल, किसी सेठ के पास, राजा के पास या तुम्हारे मालिक के पास पहुँच जाये या टैक्स में चला जाये या चोर-चोरी करके ले जाये या कोई माँगकर ले जाये, उस फसल को तो कोई दूसरा भी खा सकता है परंतु चेतना की भूमि पर बोयी गयी पुण्य और पाप की फसल को सामने वाला नहीं खा सकता। उस खेत की फसल को तो कोई पशु भी चर सकता है किन्तु इस चित्त की फसल को कोई पशु नहीं चर सकता, उस फसल के दाने तो पक्षी भी खा सकते हैं, इस फसल के दाने तो पक्षी भी नहीं खा सकते

हैं। उस फसल की रक्षा सुरक्षा करने वाले तुम्हारे अतिरिक्त अन्यजन भी हो सकते हैं किन्तु इसकी सुरक्षा तो तुम्हें स्वयं ही करनी पड़ेगी। हमारे अड़ोसी-पड़ौसी मुनिराज बस कह सकते हैं कि संभलो, अपनी फसल को देखो कहीं आपकी फसल को कषायें लूट कर न ले जायें। पंचेन्द्रिय विषय रूपी पक्षी न चुग लें, इस फसल को कोई हिंसा रूपी तिल्ली डालकर जला न दे, कोई पाप रूपी पशु इसे चर न ले।

महानुभाव! इस फसल की सुरक्षा भी हमें करनी है, सिंचन भी हमें करना है, बोना भी हमें है, इस फसल को काटना भी हमें है और फल भी हमें ही प्राप्त करना है उसका भोग और उपभोग भी हमें करना है। इस फसल को बोने का समय हर समय है। किसान के लिये तो आषाढ़-कार्तिक का महीना आता है उसमें चूक गये फिर बो नहीं सकते, किंतु इस फसल को तो कभी भी बो सकते हैं या यूँ कहें मनुष्य जीवन या पशु जीवन में बोयी जा सकती है क्योंकि मनुष्य सकलव्रती-महाव्रती बन सकता है, तिर्यंच अणुव्रती बन सकता है। देव-नारकी नहीं बन सकते किंतु देव भी पुण्य का संचय करके अपनी चित्त की भूमि को जोत-जोत करके उपजाऊ बना लेते हैं और जब भूमि उपजाऊ बन जाती है तब बीज बोना आसान हो जाता है। तो हम आज मनुष्य हैं अपनी चित्त की भूमि में बीज बो सकते हैं।

जीवन के अंतिम क्षण में भी स्वीकार किया गया वह धर्म का शब्द आपके आगे के सभी भवों को सफल व सार्थक कर सकता है। देखो! जितना पुरुषार्थ साध्य है उतना पुरुषार्थ करके अपने परिणामों को निर्मल बनाओ। फिर जो सहज साध्य हो कषायें जिन्हें दबाया जा सकता है, मिथ्यात्व कषायों के दबने से

दबता है किन्तु कोई दावे के साथ कह दे कि मैं अपने मिथ्यात्व को नष्ट कर दूँगा तो वह भी नहीं, जब उसकी स्थिति कम होती है तभी उस पर आक्रमण किया जा सकता है। मिथ्यात्व रूपी राजा बड़ा भयंकर है जब यह प्रमाद में हो तब ये जीव रूपी राजा मिथ्यात्व पर आक्रमण करे, तब सम्यक् को प्राप्त कर सकता है। वरना मिथ्यात्व का तीव्र उदय होगा तो जीव बार-बार बंदी बनाया जायेगा मिथ्यात्व रूपी राजा के द्वारा।

महानुभाव! इसीलिये हमें मौका देखकर के, यदि हमारी नियति ठीक है, यदि हम कषायों को शमन कर सकते हैं, यदि हम अपने परिणामों को निर्मल बना सकते हैं तो निर्मल बनायें। यदि तुम्हारी चेतना में सम्यक्त्व का बीज अंकुरित हो गया है तो अब एक काम करें, इसमें खारा पानी न डालें। नमक का पानी डालने से जड़ें गल जाती हैं वह वृक्ष धराशाही हो जायेगा। इसमें सम्यक्त्व को अतिचार लगाने वाले ऐसे खारे पानी को न डालें। इसमें ऐसा-खारा पानी न डालें जिससे सम्यक्त्व की जड़ें कट जाती हों। इसमें शंका का चूहा पालकर न रखें, इसमें कांक्षा का तेजाब न डालें, इसको मूढता की रस्सी से न बाँधे अन्यथा वृक्ष वहाँ से कट जायेगा। इसमें छेद करके अन्य चीज जो वृक्ष के लिये घातक हैं ऐसे रसायनिक पदार्थों का प्रयोग न करें अन्यथा वृक्ष खोखला हो जायेगा।

इस बीज को बहुत सुरक्षित करना है, बीज की सुरक्षा जरूरी है फिर अंकुर की सुरक्षा जरूरी है, फिर पौधे की सुरक्षा जरूरी है, फिर वृक्ष की पुष्प-फल की सुरक्षा भी जरूरी है। सबकी सुरक्षा जरूरी है। केवल बीज की सुरक्षा से फल नहीं मिल जाता, उसका संपोषण पूर्ण रूप से करना जरूरी है। हम और आप

अपनी चित्त की भूमि को ज्ञान का हल चलाकर के, विवेक का हल चलाकर के बार-बार दृढ़ बनायें, चित्त की भूमि पर श्रद्धा का जल बार-बार डालें क्योंकि सूखे खेत में जुताई करने से हल अच्छे से चलता नहीं है। मिट्टी थोड़ी नम होती है तो हल अच्छे से चलता है। जब हल चलता है, तभी हल निकलता है। हम भी अपने चित्त की भूमि में ज्ञान का हल चलायें और अपने जीवन के हल निकालें, हम अपने आप को संभाले, ज्ञान का हल चलाके। संसार में तो न जाने क्या-क्या हो रहा है, उधर दृष्टि डालोगे तो तुम स्वयं के लिये कुछ भी नहीं कर पाओगे। दूसरों के खेत को, फसल को, बीज को देखने से अपने खेत में फसल खड़ी नहीं होती, अपने स्वयं के खेत में बीज बोना पड़ता है। और बीज को भी संभालना बड़ा मुश्किल है। आप पढ़ते हैं-

**"बीज राख फल भोगवें, ज्यों किसान जग माहिं।**
**त्यों चक्री नृप सुख करें, धर्म विसारें नाहिं॥"**

यदि धर्म को भूलना नहीं चाहते, तो फिर उस धर्म के बीज को जिनवचन को संभालकर रखो उसे अपने चित्त की भूमि में डाल दो संसार में कोई तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सकता, वही वृक्ष बनेगा। जिनवचन-जिनअर्चन, जिनवंदन, जिनपूजन-जिनचिंतन बस इसी में लगे रहो, रमे रहो तो देखना एक दिन तुम भी स्वयं परमात्मा के रूप में अवतरित हो जाओगे, आपकी स्वयं की आत्मा भी अनंत सिद्धों के बीच जाकर उपस्थित होगी, आपकी आत्मा भी सिद्ध होगी।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# स्वर्ग का वैभव

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

स्वर्ग का वैभव क्या है? स्वर्ग की प्राप्ति का साधन क्या है? उस वैभव का सार क्या है? स्वर्ग के वैभव का अधिकारी कौन है? स्वर्ग का वैभव संसारी प्राणियों को इष्ट क्यों लगता है? ऐसी क्या विशेषता है जिसे संसार के सभी प्राणी प्राप्त करना चाहते हैं।

चारों गतियों में यूँ तो मनुष्य गति श्रेष्ठ है क्योंकि मनुष्य गति में आध्यात्मिक गहराई जितनी मापी जा सकती है, अन्य किसी गति में संभव नहीं। मनुष्य गति से संयम का सुमेरु प्राप्त किया जा सकता है, और संयम के सुमेरु की चोटी पर चढ़ने का यदि कोई मार्ग है तो वह मनुष्य गति है। रत्नत्रय की साधना करने का कोई साधन है तो मनुष्य भव है। कर्म भूमि का जन्मा हुआ मनुष्य उच्च कुलीन, अच्छी संगति से सहित, दीर्घायु, निरोगी शरीर, जिसकी भवितव्यता निकट है ऐसा मनुष्य आध्यात्मिक वैभव को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

किन्तु संसार में चार गति के जीव हैं, इन चार गति के जीवों में सबसे ज्यादा वैभव होता है तो स्वर्ग में होता है। स्वर्ग के देवों के पास इतना वैभव है जितना तीनों लोकों में अन्य किसी के पास नहीं है। यदि ये कहा जाये कि तीन लोक के प्राणियों का वैभव एक साथ इकट्ठा कर दिया जाये और सौधर्म स्वर्ग का वैभव एक तरफ रख दिया जाये, तब सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र का भौतिक वैभव संसार के वैभव से ज्यादा हो जायेगा। नारकी जीवों के पास तो कोई भौतिक वैभव है नहीं, तिर्यंचों के पास कोई

भौतिक वैभव है नहीं। मनुष्यों के पास यदि कोई भौतिक वैभव है, तो अधिक से अधिक चक्रवर्ती का वैभव। नव निधि और चौदह रत्न एक चक्रवर्ती के पास होता है। यदि एक साथ ढाई द्वीप में चक्रवर्ती हो जायें तो एक सौ सत्तर चक्रवर्ती हो सकते हैं। एक समवशरण में सौधर्म इन्द्र चारों गोपुर द्वारों पर दोनों साइडों में 108-108 नव निधियों के ढेर लगाता है।

महानुभाव! 864 निधि एक तीर्थंकर के समवशरण में, गोपुर द्वारों के बाहर रखी हुयी हैं जो निधि चक्रवर्ती के पास 1-1 की संख्या में होती हैं। यदि पूरे मनुष्य भव का वैभव इकट्ठा कर लिया जाये तो भी सौधर्म इन्द्र के वैभव का एक करोड़वाँ भाग भी न बन पायेगा। इसलिये मनुष्यों का भौतिक वैभव बहुत कम है। व्यंतर देव, भवनवासी देव, ज्योतिष देव इन सभी देवों का वैभव इकट्ठा किया जाये, भवनवासी देवों के भवन होते हैं, व्यंतर देवों के भी नियत स्थान होते हैं, ज्योतिष देवों के विमान होते हैं इनके पास भी जो वैभव है वह भी स्वर्ग के देवों के सामने कुछ नहीं है।

स्वर्ग का वैभव निस्सीम होता है। स्वर्ग के वैभव की प्राप्ति कैसे होती है? और संसार का प्राणी स्वर्ग का वैभव ही क्यों चाहता है? क्योंकि उसे अभी भौतिक वैभव से तृप्ति नहीं हुयी। जब तक भौतिक वैभव से तृप्ति नहीं होती है, तब तक उसे विरक्ति नहीं होती है, तब तक आध्यात्मिक प्यास जाग्रत नहीं होती है। आत्मा की निधि तो वही खोजना चाहता है जिसे भौतिक वैभव से संतुष्टि नहीं मिली, भौतिक वैभव को भोगकर के उसने सोच लिया कि इससे भी ज्यादा मिल जाये तब भी ये

शाश्वत नहीं है। आत्मा का वैभव शाश्वत है, स्वभावमय है इसलिये उस आध्यात्मिक वैभव को कोई छीन नहीं सकता। आत्मा के वैभव को छीनने में कोई समर्थ नहीं है।

पुद्गल का वैभव हमने और आपने भी कई भवों में प्राप्त किया होगा, किन्तु प्राप्त करके उसका भोग, समय पूर्ण होने पर नियत अवधि पर हमसे छूट गया। स्वर्ग में रहने वाले देव- जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं, मृत्यु के छः माह पूर्व उनकी माला मुरझाने लगती है, वे दुःखी होते हैं, आर्त्तध्यान करते हैं, संक्लेशता में जीते हैं इसलिये अपने शरीर का परित्याग करके वे मिथ्यादृष्टि देव एक इन्द्रिय में भी पैदा हो सकता है। **ताते चय थावर तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे**।। बारहवें स्वर्ग से ऊपर वाले देव मनुष्य ही होते हैं किन्तु नीचे वाले देव पंचेन्द्रिय पशु भी बन सकते हैं पहले दूसरे स्वर्ग वाले देव एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न हो सकते हैं। देव कभी मृत्यु को प्राप्त करके विकलत्रय नहीं बनते।

स्वर्ग में भी दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं जिनसे अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त किया जाता है। केवल उपभोग के लिये व प्रमोद-मनोरंजन के लिये। उन्हें अपने शरीर के पोषण के लिये उन कल्पवृक्षों की आवश्यकता नहीं है, उसके लिये तो उनके कंठ से अमृत निःसृत होता है, जितने सागर की आयु होती है उतने हजार वर्ष में एक बार क्षुधा का अनुभव हुआ और सहज में ही कंठ से अमृत निःसृत हो गया, उन्हें मुख से कुछ खाने की आवश्यकता नहीं होती। वे देव इतने पुण्यात्मा होते हैं कि उन्हें शरीर में कोई कष्ट नहीं होता, श्वांस लेने का कष्ट भी उन्हें आपके और हमारे जैसा नहीं होता। जितने सागर की आयु

होती है उतने पक्ष में एक बार श्वाँस लेते हैं पुनः निश्चिन्त हो गये। हमें तो एक मिनट में 18-20 बार 1 दिन में लगभग 21600 बार श्वांस लेना पड़ता है, जबकि देवों को अपनी आयु के सागरों के अनुसार उतने पक्षों में श्वांस लेना होता है।

वे जितने समय तक स्वर्ग में रहेंगे उनके शरीर में रोग पैदा नहीं होगा, क्योंकि जैसे रोग औदारिक शरीर में पैदा होते हैं वैसे रोग वैक्रियक शरीर में पैदा नहीं होते। ये वैक्रियक शरीर तो सप्त धातु-उपधातु से रहित होता है। औदारिक शरीर में सप्त धातु-उपधातु होती हैं। 5 करोड़ 68 लाख, 99 हजार 584 रोग इस औदारिक शरीर में हैं। कब कौन से रोग का उदय आ जाये कुछ भी नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात ये भी है कि देव चाहे कोई भी क्यों न हों, वे देव सहज में सुंदर होते हैं, कोई भी देव विकृत रूप के नहीं होते, वे विक्रिया ऋद्धि से जैसा चाहें वैसा रूप बना सकते हैं। स्वर्ग का कोई भी देव कितना ही निकृष्ट से निकृष्ट जाति का क्यों न हो फिर भी वह कुरूप या असुंदर नहीं होता।

स्वर्ग के किसी भी देव की अशुभ लेश्यायें नहीं होती। मिथ्यादृष्टि होने के बावजूद भी उसके परिणाम शुद्ध होते हैं और उनकी द्रव्य व भाव लेश्या दोनों एक सी होती हैं इसलिये बाह्य शरीर भी सुंदर होता है। वे राजकुमार जैसे होते हैं, उनके शरीर में कभी भी क्षरण नहीं होता, जैसा जन्म होता है, वैसा ही उनका शरीर मृत्यु के छः महीने तक रहता है। मृत्यु के छः महीने पूर्व मिथ्यादृष्टि की गले की माला मुरझाने लगती है, मुकुट झुकने लगते हैं किन्तु सम्यक्दृष्टि का ऐसा नहीं होता उसकी कांति भले ही मंद पड़े वे अपने अवधिज्ञान से जान लेते हैं कि मेरा आयु कर्म पूरा होने वाला है।

महानुभाव! स्वर्ग में और कौन सा वैभव है? एक वैभव और है जो मनुष्यों में न के बराबर है, स्वर्ग में प्रभु भक्ति जितनी की जा सकती है उतनी प्रभु भक्ति हम 100 भव लेकर भी नहीं कर सकते। वहाँ पर दिन रात का भेद नहीं इसलिये नंदीश्वर द्वीप जाकर वे देव आष्टाह्निक पर्वों में पूजा करते हैं। प्रत्येक देव अपने विमान में स्थित वीतरागी जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-अर्चना नियम से करता है। मिथ्यादृष्टि है तो वह कुल देवता मानकर पूजा करता है और सम्यक्दृष्टि है तो अपने सच्चे देव मानकर पूजा करता है। इतने सागर पर्यंत भगवान् की पूजा भक्ति करके वह पुण्य उसके लिये मोक्ष का साधन बनता है।

100 भव में भी मनुष्य अपना इतना समय समवशरण में नहीं दे सकता, जितना समय अपनी दीर्घायु होने के साथ देव तीर्थंकर के समवशरण में बैठकर दिव्यध्वनि सुनते हैं। समवशरण में बैठे-बैठे व्यक्ति की कषाय इतनी तीव्र नहीं होती, समवशरण में बैठकर तीव्रपाप का आश्रव नहीं होता, समवशरण में बैठकर के इन्द्रिय उच्छृंखल नहीं होती, विषय वासना नहीं जागती। समवशरण में बैठकर सामान्य व्यक्ति को कभी कोई रोग नहीं होता। समवशरण में बैठे हुये व्यक्ति की कभी मृत्यु नहीं होती, समवशरण में किसी का जन्म नहीं होता, यहाँ तक कि समवशरण में बैठकर के किसी को छींक, जम्हाई व खाँसी तक नहीं आती। यह भगवान् का अतिशय होता है तो ऐसे समवशरण में देवों को तो सुचिर काल तक बैठने का अवसर मिलता है। वे अपने मूल शरीर से स्वर्ग में भी रहते हुये उत्तर शरीर से चाहे महीनों, वर्षों पर्यंत समवशरण का पुण्य लाभ लेते रहें, वहाँ भगवान् की भक्ति करते रहें स्वर्ग में रहने वाले देवों का कोई परिवार नहीं

होता, उन्हें कोई चिन्ता नहीं होती कि मेरे परिवार का क्या हो रहा होगा। वे निराकुल होकर के भक्ति पूजा कर सकते हैं।

महानुभाव! मनुष्यों के पास बहुत झंझट हैं, चिन्तायें हैं, विकल्प हैं, आकुलता-व्याकुलतायें हैं। यदि वह चार माह के लिये गृहत्याग करके किसी तीर्थक्षेत्र पर भी जाता है तो पहुँच नहीं पाता उससे पहले फोन आ जाता है अच्छे से पहुँच गये या नहीं, अथवा पहुँच नहीं पाये तब तक कोई अशुभ समाचार उसके पहुँचने से पहले घर वाले वहाँ तक पहुँचा देते हैं और उसकी तीर्थवंदना में विघ्न डाल दिया। सूचनायें पहले व्यक्ति को इतनी नहीं दी जाती थी पहले व्यक्ति जब गृहत्याग करके जाता था तो यह सोचकर कि लौटकर आ जाऊँगा तब घरवालों से संबंध रखूँगा? तब तक घरवालों का त्याग। महानुभाव! स्वर्ग में तो कोई परिवार नहीं अत: स्वर्ग के देवों में कोई सूतक-पातक नहीं होता, स्वर्ग के देवों में इतना आर्त्त व रौद्र ध्यान भी नहीं होता, स्वर्ग के देवों में कषायों की मंदता होती है वहाँ पर पुण्य के निमित्त ज्यादा हैं इसलिये स्वर्ग के वैभव को संसारी प्राणी चाहते हैं।

अभी तक इस जीव को संसार का जो वैभव मिला उससे तृप्ति नहीं हुयी। तृप्ति थोड़ी सी विभूति को प्राप्त करके भी हो सकती है और विरक्ति भी हो सकती है किन्तु कई बार ऐसा होता है जब तक तृष्णा की अग्नि जलती रहती है तब तक मन में रहता है और मिले-और मिले। इस प्रकार करते-करते कभी तृप्त नहीं होते किन्तु जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं पर विराम लगा देता है, तो पुन: उसकी तृप्ति होने लगती है। जो अपनी इच्छाओं पर विराम नहीं लगाता है उसके जीवन में कभी तृप्ति नहीं होती।

AND और END ये दो शब्द हैं किन्तु दोनों का अर्थ एक दूसरे से विपरीत है। AND जब अपनी इच्छाओं के साथ लगाते हो तब अर्थ होता है और चाहिये-और चाहिये, किन्तु इच्छाओं पर जब END लग जाता है तब अर्थ होता है विराम, अब नहीं चाहिये। जब आप कहोगे कि न चाहिये तब तुम्हें अंदर से तृप्ति होने लगेगी, अंदर से शांति मिलने लगेगी, अंदर सुखद अनुभूति होने लगेगी। बाहर की वस्तुओं से यदि हम तृप्ति चाहते हैं, सुख-शांति चाहते हैं तो ये हमारा भ्रम है। मृग मरीचिका की तरह से बाहर की वस्तुओं को पकड़ते हैं। जब तक बाहर की वस्तु नहीं मिलती है तब तक उसके प्रति विश्वास रहता है कि इससे सुख मिल जायेगा और जैसे ही मिल जाती है, उसकी कीमत घट जाती है। जो वस्तु आपके पास नहीं है उसको प्राप्त करने के लिये आपके मन में तड़प है, बैचेनी है, प्यास है, आकुलता है कैसे भी मिले चाहे कानूनी रूप से या गैर कानूनी रूप से व्यक्ति उसे प्राप्त करना चाहता है।

जिसके पास धन नहीं वह धन प्राप्त करना चाहता है, जिसके पास धन है वह धन से विरक्त है किन्तु किसी दूसरी चीज में आसक्त है। जम्बूकुमार का विवाह चार कन्याओं के साथ हुआ। उनकी माँ सुहागरात्रि में देखती है कि मेरा बेटा क्या कर रहा है। वह बार-बार झाँक कर देखती है किन्तु मालूम चलता है कि उसकी चारों रानियाँ उसके पास बैठी हैं और चर्चा चल रही है। माँ सोचती है कब ये भोगों में आसक्त हो, विद्युच्चर चोर जो चोरी करने आया था, माँ ने उसे देखा और कहा- तुम चोरी मत करो, वरन् तुम्हें जो चाहिये सो धन तू ले जा किन्तु मेरा एक काम कर दे, मेरा बेटा जो भोगों से विरक्त हो रहा है उसे

तू कैसे भी समझा-बुझा करके भोगों में आसक्त कर दे। यह मेरा इकलौता बेटा है, यदि ये दीक्षा ले लेगा तो हम क्या करेंगे।

विद्युच्चर चोर जाता है कहता है, जम्बू! मैं तुम्हारा मामा हूँ तुम्हारे विवाहोपलक्ष्य में आया हूँ, आज बहुत वर्षों बाद तुमसे मिला हूँ, वह मामा बनकर उसे भोगों में फँसने के लिये कहता है अरे! ये तुमने क्या लगा रखा है, जो सामने वस्तु है तुम उसे भोग नहीं रहे और आशा करते हो कि स्वर्ग व मोक्ष का सुख मिले अरे! स्वर्ग-मोक्ष किसने देखा है। विद्युच्चर बहुत तर्क करता है किन्तु जम्बूस्वामी उसे निरुत्तर करते जाते हैं। प्रात:काल हुआ विद्युच्चर चोर कुछ नहीं कर पाया, विद्युच्चर चोर उनकी माँ के पास आता है और कहता है माँ! मैंने वह वैभव प्राप्त कर लिया जिस वैभव को आप मुझे देना चाहती हो, और अपने 500 साथियों के साथ, प्रात:काल सूर्य की पहली किरण निकले उसके पहले ही मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

जम्बूकुमार प्रात:काल सुधर्माचार्य के पास दीक्षा लेने पहुँचे और देखा कि वहाँ पहले ही विद्युच्चर व 500 साथी बैठे हैं, उन्होंने पूछा अरे! आप तो मेरे मामा थे, मुझे समझा रहे थे, वे बोले मैं मामा नहीं, चोर था चोरी करने आया था किन्तु रात भर में मैं तुम्हें समझा नहीं पाया अपितु तुम्हारे उत्तरों से मैं ऐसा समझ गया कि मेरी बाह्यधन की भूख शांत हो गयी, उससे विरक्ति हो गयी। एक मैं जो तुम्हारे घर चोरी करने गया और एक तुम जिसके पास इतना वैभव है उसे छोड़कर के जा रहे हो, अपनी सुंदर देवांगनाओं जैसी रानियों को छोड़कर जा रहे हो मुझे भी विरक्ति हो गयी मैंने मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

महानुभाव! विरक्ति के लिये उस वस्तु का सेवन करना भोगना जरूरी नहीं है, बिना भोगे भी उसका त्याग किया जा सकता है। अनुभव एक अलग चीज है। एक अनुभव भोगने पर होता है एक अनुभव देखने पर भी होता है। पाँच तीर्थंकर बालब्रह्मचारी हुये, उन्होंने इस भव में भोगों को भोगा नहीं किन्तु उन्होंने दूसरों को देखकर के या अतीत का स्मरण करके उससे विरक्त हो गये, दीक्षा ले ली और मोक्ष को प्राप्त किया। 19 तीर्थंकरों ने भोगकर पुनः त्याग किया और दीक्षा लेकर के अपना कल्याण किया।

जिस प्रकार किसी व्यक्ति ने जहर का भक्षण किया वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो गया अब देखकर तुम्हें विश्वास हो गया कि ये जहर निःसंदेह ही मारने वाला है, आप उसे खाओगे नहीं। आप कहोगे मेरा अनुभव सच कह रहा है यह जहर निश्चित रूप से मार देगा। कोई कहे क्या आपने खाकर देखा? वह कहेगा भैया! यदि खाकर देखता तो बताने के लिये जीवित नहीं रहता। जिसने इसको खाया है, मैंने उसको देखा है, मुझे यह अनुभव है कि ये जहर मारने वाला है।

जीवन में तुमने कभी अग्नि में हाथ नहीं डाला हो, किन्तु अग्नि में झुलसते जीवों को तुमने देखा है और तुम्हें विश्वास है कि अग्नि जलाती है। जैसे तुम्हें अग्नि व जहर का सत्य ज्ञान है, अनुभव ज्ञान है कि अग्नि जलाने वाली होती है, जहर मारने वाला होता है हमने दूसरों को इसके द्वारा मृत्यु के मुँह में जाते देखा है, वह देखना भी हमारे लिये अनुभव बन जाता है। ऐसे ही जो संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गये, चाहे तीर्थंकर प्रभु या अन्य महापुरुष उन्हें देखकर के अपने मन में अनुभव को जगाओ। संसार के वैभव को भोग करके त्याग करने वाले

व्यक्ति विरले होते हैं क्योंकि जो भोगों में आसक्त हो जाते हैं उनके लिये त्याग कर पाना बड़ा कठिन होता है। किन्तु जो व्यक्ति भोगों को भोगकर के विरक्त हो गये मैं तो मानता हूँ कि वे वास्तव में बहुत महान् हैं।

बाल ब्रह्मचारी यदि दीक्षा लेता है तो उतना आश्चर्य नहीं होता, उसने तो भोगों को देखा ही नहीं, भोगों का स्वाद लिया ही नहीं वह तो अछूता रहा, कीचड़ में पैर दिया ही नहीं जो धोने की आवश्यकता पड़े किन्तु जो कीचड़ में पैर देकर के, कीचड़ को अपने शरीर से लपेट करके, उस कीचड़ (भोगों) में से निकल कर, आत्मा को परमात्मा बनाने के लिये, सब कुछ त्याग करके आ-जा जाये बहुत बड़ी बात है। महावीर स्वामी वैरागी हुये इतने आश्चर्य की बात नहीं है, ऋषभदेव स्वामी वैराग्य को प्राप्त हुये ज्यादा आश्चर्य की बात है। उनकी पत्नियों ने उन्हें खूब रोकने का प्रयास किया किन्तु ऋषभदेव नहीं रुके। महाराज नाभिराय-मरुदेवी ने रुदन किया, रोकने का प्रयास किया उन माता-पिता को सौधर्मइन्द्र व शची इन्द्राणी समझाते हैं किन्तु वे उनके रोकने से रुके नहीं, उनके सौ पुत्रों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, दो पुत्रियाँ सामने खड़ी हो गयी वे नहीं रुके, 4000 अधीनस्थ राजाओं ने कहा आप यदि नहीं मानते हैं तो हम भी आपके साथ दीक्षा ले लेंगे और बात सिर्फ कहने की नहीं थी, उन राजाओं ने दीक्षा ले ली किन्तु ऋषभदेव नहीं रुके। महावीर स्वामी के साथ दीक्षा लेने वाले राजा कम ही रहे।

शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, भरत चक्रवर्ती जैसे महापुरुषों का दीक्षा लेना वास्तव में आज के व्यक्ति के लिये घोर आश्चर्य की बात है। इतने सारे वैभव को प्राप्त करके, उसमें व्यस्त

होकर के कोई व्यक्ति संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो जाये पुनः दीक्षा ले ले तो ऐसा व्यक्ति या तो नियम से मोक्ष को प्राप्त करता है कदाचित् राग आ गया तो ऐसा व्यक्ति स्वर्ग के उत्कृष्ट वैभव को प्राप्त करता है, सर्वार्थसिद्धि आदि को प्राप्त करता है।

महानुभाव! स्वर्ग का वैभव कहिये तो सौधर्म स्वर्ग की विभूति है, वह-विभूति ही तीनों लोकों में सबसे ज्यादा मानी गयी है। उसकी प्राप्ति कैसे होगी? सौधर्म स्वर्ग की विभूति उसे मिलती है जिस व्यक्ति के अंतरंग में जिनेन्द्र भगवान् के प्रति अकाट्य श्रद्धा होती है, अकाट्य भक्ति होती है उसे स्वर्ग की विभूति मिलती है। जिसे भगवान् के दर्शन-पूजन किये बगैर चैन नहीं मिलता, जो भगवान् के पास घंटों बैठा रहता है, क्यों बैठा रहता है। वह कहता है भगवन्! आपको छोड़ घर जाता हूँ तो मुझे वहाँ आपकी याद आ जाती है। रात में आपकी छवि मेरी आँखों में तैर जाती है मेरी आँखें गीली हो जाती हैं। जिस व्यक्ति के जीवन में भगवान् के प्रति ऐसी भक्ति है वैसे ऐसी भक्ति मिल पाना मुश्किल है।

अभी किसी संसारी प्राणी की आँखों में आँसू आये होंगे तो माँ की आँखों में आँसू अपने बेटे की याद में आये होंगे, किसी पत्नी की आँखों में आँसू अपने पति की याद में आये होंगे, किसी बेटी की आँखों में आँसू अपने पिता की याद में आ गये होंगे, या अपनी माँ, बहिन भाई के लिये आ गये होंगे किन्तु ऐसा व्यक्ति खोजना बड़ा मुश्किल है जिसके जीवन में भगवान् के प्रति अकाट्य भक्ति हो, भगवान् के दर से जब जाये तब उसकी आँखें गीली हो जायें। जैसे जब तुम अपने मित्र से विदा लेते हो तब तुम्हारी आँखें गीली हो जाती हैं, जैसे कोई पिता अपनी बेटी

की विदाई करता है फूट-फूट करके मुँह ढांक करके रोता है तो ऐसा निश्चल प्रेम जो पिता-पुत्री का है, माँ-बेटे का है, भाई-भाई का है जो तुम्हारा संसार के प्रति प्रेम है, यदि ऐसा अकाट्य प्रेम तुम्हारा भगवान् के प्रति हो जाये तो स्वर्ग का वैभव तुम्हें खोजता हुआ स्वयं तुम्हारे पास चला आयेगा।

महानुभाव! स्वर्ग का वैभव असंभव नहीं है, वह दुर्लभ नहीं है स्वर्ग का वैभव बहुत आसान है उनके लिये जो जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में वास करना चाहते हैं, उनके लिये जिनके चित्त में चौबीसों घंटे भगवान् विराजमान रहते हैं, जिन्हें आँख खोलने पर भी भगवान् दिखायी दे रहे हैं, आँख बंद करने पर भी भगवान् दिखाई दे रहे हैं। पुण्यात्मा है वह जीव जो नित्य ही प्रातः काल भगवान् का दर्शन पूजन अभिषेक करता है, स्वर्ग का वैभव नियम से उसकी इंतजारी कर रहा है। जो भगवान् की इंतजारी करता है स्वर्ग का वैभव उसकी इंतजारी करता है, जो भगवान् की इंतजारी नहीं करता, भगवान् के दर्शन के लिये जिसके पास दो मिनट का टाइम नहीं है, भक्ति तो तब कहलाये जब मंदिर खुलने का समय छः बजे हो और तुम पौने छः बजे आकर ही इंतजारी करने लगो। पहले से इंतजारी तुम करो, भगवान् तुम्हारी इंतजारी न करें। जो भगवान् से अपनी इंतजारी करवाता है वह निःसंदेह अपने संचित पुण्य का क्षय करता है। इसलिये सदैव भगवान् के दर्शन करने चाहिये। आप विचार करें यदि मेरा भवन मंदिर के समीप ही है फिर भी मैं यदि भगवान् के पास नहीं जा रहा हूँ तो कष्ट के समय कौन सा मुँह लेकर मैं भगवान् के पास जाऊँगा, जब मेरे जीवन में कोई प्रतिकूलता आयेगी तब मैं भगवान् से कैसे बात करूँगा।

**सुख में सुमिरन किया नहीं, दुःख में करता याद।**
**कहत कबीर उस भक्त की, कौन सुने फरियाद॥**

सुख के समय तो तुमने याद किया नहीं, अब दुःख आने पर उनकी याद कर रहा है यह तो बेईमानी होगी।

**दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।**
**जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय॥**

महानुभाव! भगवान् की पूजन अर्चना करने से आपके करोड़ों बिगड़े हुये काम बन जायेंगे किन्तु करोड़ों काम करने से भगवान् के पूजन-अर्चन का पुण्य संचय नहीं हो सकता।

**जिन पूजा सम पुण्य न दूजा, कथित तत्त्व आगम वरणी।**
**कोटि कार्य छोड़ के मौकूं, जिनवर की पूजा करनी॥**

सम्यक्दृष्टि कहता है मैं करोड़ों कार्यों को छोड़कर के भगवान् की पूजा करूँगा। जो शुद्ध भावना से भगवान् की पूजा करता है, उसे जीवन में कभी न तो विशेष दुःख होता है, न कोई महारोग होता है न कोई उसके जीवन में विशेष आपत्ति विपत्ति आती है। पूजा करने वाले को पूजन का फल नियम से मिलता है, किसी कवि ने लिखा है-

**जे नर पूजा करते हैं, ते नर इन्द्र समान।**
**मनुज मजदूरी देत है क्यों न देत भगवान्॥**

यदि कोई व्यक्ति आपके गोदाम पर कार्य करता है, उसको आप महीने में कुछ वेतन देते हो, जब कोई मनुष्य अपनी सेवा करने वाले को वेतन देता है तो भगवान् की सेवा करने वाले को कुछ न मिले ऐसा कैसे हो सकता है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी जी ने इष्टोपदेश में लिखा-

**यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौ कियद्दूर वर्तिनी,**
**यो नयत्याशु गत्यूतिं क्रोशार्द्धे किं स सीदति॥**

जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने के परिणाम से भी उसे मोक्ष तक की प्राप्ति हो सकती है। अरे! जब मेंढक भी अपने मुख से पांखुरी दबा करके पूजा करने के लिये भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण जा रहा था पहुँच नहीं पाया, राजा श्रेणिक के हाथी के पगतल आकर मर गया किन्तु फिर भी मृत्यु को पाकर देव बन गया। राजा श्रेणिक से पहले समवशरण में पहुँच गया।

भक्ति का फल अचिंत्य है इसे शब्दों में कोई कह नहीं सकता, चार ज्ञान के धारी गणधर परमेष्ठी भी नहीं कह सकते, द्वादशांग का पाठी इन्द्र भी नहीं कह सकता इसलिये जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति में तो मन लगाना ही चाहिये। यदि स्वर्ग का वैभव पाने की वांछा है या आत्मा का वैभव पाने की वांछा है तो भगवान् के चरणों में भक्ति पूजन अर्चन वंदन करना अनिवार्य है।

**"श्री शांतिनाथ भगवान् की जय"**

# 'मुक्ति का पात्र कौन?'

**धर्मस्नेही सत्श्रद्धालु पुण्यात्मा महानुभाव!**

अनादिकाल से संचरण करता हुआ ये जीव संसार में ही कई बार अच्छा मानने लगता है। जैसा कि आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा-

**यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिं।**
**यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति।।**

जो जहाँ पर निवास करता रहता है, फिर वहीं पर रमण करता रहता है, वहीं पर उसको प्रीति हो जाती है वह अन्यत्र कहीं जाने की चेष्टा नहीं करता। उसके मन में वहाँ से जाने का ख्याल भी पैदा नहीं होता। जिस स्थान पर पहली बार पहुँचा हो, प्रारंभ में उसे वहाँ प्रतिकूलता का अनुभव होता है, प्रारंभ में उसकी संक्लेशता बनती है, प्रारंभ में उसे दु:ख अनुभव में आता है, प्रारंभ में उसे परक्षेत्र, परवस्तु में परायापन महसूस होता है किन्तु वही व्यक्ति जब वहीं-वहीं रहने लगता है तब फिर वह उसे छोड़कर के कहीं जाना नहीं चाहता। यह संसार की दशा है इसीलिये संसारी प्राणी परिभ्रमण करने में समर्थ हो सका, यदि संसारी प्राणी के संस्कार ऐसे न होते, तब संसारी प्राणी संसार में दीर्घकाल तक रह नहीं सकता वह संसार से विरक्त हो जाता।

दूसरी बात यह है कि वह संसार में नव-नव पर्यायों को प्राप्त होता रहता है। प्रत्येक द्रव्य की ये क्षमता है, प्रत्येक द्रव्य नयी-नयी पर्यायों को ग्रहण करता है, उसमें ऐसी शक्ति और सामर्थ्य है। कोई भी संसार का द्रव्य कूटस्थ नहीं है उसमें परिणमन होता है, गुणों में भी परिणमन होता है और द्रव्य में भी

परिणमन होता है। परिणमन इसकी नियति है, परिणमन इसका स्वभाव है, परिणमन इसका लक्षण है, परिणमन इसका मूल हेतु है। यदि किसी द्रव्य में परिणमन न हो तो द्रव्य नाम की चीज ही न रहे। द्रव्य की द्रव्यता द्रव्यत्व गुण के कारण कायम रहती है और द्रव्यत्व गुण का आशय होता है कि वह एक दशा में कूटस्थ नहीं रह सकता, उसकी पर्यायें प्रतिक्षण बदलती ही रहती हैं।

संसारी प्राणी के सामने नित्य नयी-नयी पर्यायें आती रहती हैं, उन नव नूतन पर्यायों को प्राप्त करके, उनमें ही राग-द्वेष पुनः-पुनः करता रहता है। एक भव में मिले हुये उसके हितैषीजन, उसके मित्र, उसके शुभाकांक्षी, यदि यही-यही सुचिर काल तक बार-बार मिलते रहें तो व्यक्ति का राग कम हो जायेगा। जिससे एक बार बैर बाँध लिया यदि उसी से बैर निरंतर चलता रहे तो व्यक्ति उस बैर को भी क्षमा कर देगा। किन्तु यह नये-नये मित्र पैदा करता है और नये-नये शत्रु पैदा करता है। एक मित्र से भी संतुष्ट नहीं होता और एक शत्रु से भी संतुष्ट नहीं होता। ऐसा नहीं है कि जिस व्यक्ति या वस्तु के प्रति एक बार राग हो गया तो राग हमेशा उसी के प्रति बना रहे। ऐसा भी नहीं है कि किसी एक के प्रति द्वेष पैदा हो गया तो हमेशा द्वेष उसी के प्रति बना रहे। राग-द्वेष-मोह ये बदलते रहते हैं क्योंकि नयी-नयी पर्यायों को प्राप्त करने का व ग्रहण करने का भाव निरंतर इस जीव में आविर्भाव होता रहता है और तिरोहित भी होता है। एक भाव के साथ कोई भी जीव सुचिरकाल तक एक दशा में नहीं रह सकता।

पाश्चात्य देशों में तो ऐसा भी देखा जाता है कि यदि व्यक्ति

अपने जीवन में सोचे हुये कार्यों को पूरा कर लेता है तब वह कहता है मैंने जो सोचा था, वह पूरा कर लिया अब जिंदगी से मैं ऊब गया अब तो ऐसा लगता है जिंदगी को छोड़ देना चाहिये और ऐसा सोचकर के पाश्चात्य देशों में कुछ व्यक्ति आत्महत्या कर लेते हैं। वे सोचते हैं जीवन का कुछ भी नहीं है, जो मुझे चाहिये था, वह मुझे मिल गया, जब मिल गया तो अब छोड़ दो। जब दीर्घकाल की आयु वाले महापुरुष होते थे, उस समय संसार में उपलब्ध विषयों का सेवन करके वे विरक्त होने लगते थे, या तो विरक्ति का भाव बढ़ जायेगा नहीं तो पुनः नूतन वस्तु की खोज की जायेगी।

आप नित्य वस्त्र पहनते हैं यदि एक ही वस्त्र की जोड़ी आपको दे दी जाये कि हमेशा आपको ये ही पहनना है तो उस वस्त्र से आप ऊब जायेंगे। भोजन भी आप करते हैं यदि एक ही प्रकार का भोजन हमेशा खाने के लिये मिले तो भोजन से भी आप ऊब जायेंगे, आप भोजन को भी बदलते हैं जैसे वस्त्रों को बदलते हैं कभी पेंट-शर्ट पहनते हैं तो कभी कुर्ता-पजामा पसंद करते हैं, कभी नये-नये डिजाइन-स्टाइल के, रंगों के वस्त्रों को ग्रहण करना चाहते हैं, आभूषण भी बदल-बदल कर पहनना चाहते हैं। एक व्यक्ति हाथों में कपड़े का पैकेट लेकर दौड़ता चला जा रहा था, पूछा-भाई! क्यों भाग रहे हो? बोला नये कपड़े लाया हूँ सोच रहा हूँ जल्दी से इन्हें पहन लूँ कहीं पहनने से पहले फैशन ही न बदल जाये। इतनी तीव्र गति से फैशन बदल रहे हैं इसलिये पुरुष तो एक बार को संतोष की श्वांस ले भी ले किंतु माता बहिनों का अधिकांश चिंतवन यही चलता रहता है कि अब कौन से वस्त्र, अब कौन से आभूषण?

नये के प्रति प्राणी को सहज ही अनुराग होता है, आप एक बार सोचना कि ये कहाँ तक सही है- पुराने शत्रुओं के प्रति शत्रुता भी घटने लगती है। आपके सामने यदि कोई नया शत्रु पैदा हो जाये तो उसके प्रति शत्रुता का भाव बढ़ जायेगा, पुराने के प्रति सहज ही घट जायेगा। किसी से 30-40 साल पहले कोई वाद-विवाद या तिरस्कृत-अपमान या झगड़ा हुआ हो तो वह शत्रुता की खाई भरने लगती है, शत्रुता के बंधन ढीले होने लगते हैं किन्तु फिर नया शत्रु पैदा कर लेते हैं। क्योंकि पुराने शत्रु में वह रस नहीं आ रहा जो रस नयी शत्रुता के समय था। जिससे राग करते हैं, जब प्रारंभ में राग किया था, उस समय जो रस आ रहा था वह रस अब नहीं आ रहा, इसलिये राग के लिये भी नयी चेतन-अचेतन वस्तु तय कर लेते हैं। जिसके प्रति बहुत मोह था, माना आपका प्रथम पुत्र हुआ उसके प्रति आपका तीव्र मोह रहा किन्तु जैसे ही बड़ा हुआ, वह आपको बिल्कुल चाहता ही नहीं है तो आपका मोह उसके प्रति कम हो जायेगा, आप सोचेंगे दूसरा पुत्र होता तो ठीक है। नहीं पैदा होने की संभावना है तो सोच लेते हैं इसे अलग करो दूसरा पुत्र गोद ले लेते हैं। तो वह मोह को किसी और के साथ स्थापित करता है। राग-द्वेष की स्थापना नव-नव में करता है क्योंकि एक में स्थापना करते-करते वह ऊबने लगता है। वह उसमें डूब नहीं सकता क्योंकि व्यक्ति आत्मा में ही सुचिरकाल तक डूब सकता है। अन्य पर वस्तु में अधिक समय तक डूब नहीं सकता उसे ऊबना ही पड़ेगा।

महानुभाव! यदि ऊब गया तो संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर या तो संन्यास को ग्रहण कर लेगा अपनी आत्मा में डूब

जायेगा, नहीं तो फिर नयी वस्तु का अविष्कार करेगा, खोजेगा, निर्माण करेगा। नये व्यक्ति को नये स्थान को खोजेगा। व्यक्ति गाँव में रहते-रहते ऊब गया तो सोचता है कहीं फार्म हाउस बना लूँ, वहाँ भी ऊब गया तो सोचता है किसी हिलस्टेशन पर घर बना लूँ वहाँ पहुँचकर भी ऊब गया तो सोचता है जंगल में जा बसूँ। अपने मन को हम संतुष्ट करते रहते हैं क्योंकि मन एक में रहने का आदी नहीं है वह एक में रहकर भी उसकी पर्यायों को बदलता ही रहता है।

यदि किसी व्यक्ति को मीठा बहुत पसंद है उसे मीठा ही मीठा खिलाया जाये तो वह उस मीठे से भी ऊब जायेगा। वह मिष्ठान्न की पर्याय बदलेगा एक फार्म में वह मीठा उसे सहन नहीं होगा। यदि मित्र भी ज्यादा अति करने लगें तो मित्रों से विरक्त हो जायेगा भैया! मुझे तेरी हँसी मजाक ज्यादा अच्छी नहीं लगती, मित्रों से भी बैर बाँध लेगा, मित्रों में शत्रु खोजने का प्रयास करेगा और शत्रु ज्यादा हों मित्र कम तो जो शत्रु कमजोर हैं जो शत्रु आपके अनुकूल बनता चला जा रहा है, उस शत्रु में भी मित्र की कल्पना की जा सकती है।

महानुभाव! संसार में परिभ्रमण का सबसे बड़ा कारण यही है कि यह जीव नूतन-नूतन पर्यायों में आनंद लेने लगता है। एक पर्याय से आनंद लेते-लेते जब तृप्ति होने लगती है या तृप्ति नहीं होती वह पर्याय नीरस लगने लगती है तब पुनः नई की खोज करता है। कोई भी व्यक्ति अपना एक काम करते-करते बोर होने लगता है, तब वह कुछ बदलाव लाता है। जैसे सर्विस वालों के सभी कार्य नियत हैं, समय पर आना, समय पर जाना किन्तु उन्हें भी जब छुट्टी मिलती है तो कहीं घूमने-फिरने या अन्य

मनोरंजन की सोचता है। यदि वह एक ही माहौल में रहेगा तो वह नि:संदेह विरक्त हो जायेगा, विरक्त हो जायेगा तो फिर उसे दुबारा से ग्रहण करना नहीं चाहेगा। किसी व्यक्ति की जिसमें रुचि है, वह रुचि उसे अतिरूप में मिल जाये तो फिर वह उसे देखना, स्पर्श करना भी पसंद नहीं करेगा, उसे छोड़ देगा या मुख मोड़ लेगा।

व्यक्ति संसार से विरक्त हो सकता है, यदि तुम्हें जिससे विरक्त होना है उसकी अति कर लो, किन्तु तुम्हारे शरीर में वो सामर्थ्य नहीं है कि तुम अति कर सको। अति के उपरांत इति होती ही होती है। यदि किसी काम की तुमने अति कर ली तो उसकी इति हो जायेगी। इसलिये व्यक्ति अति होने के पहले ही बदल लेता है। यदि कोई व्यक्ति एक ही रास्ते पर चलेगा तो अपनी मंजिल को प्राप्त कर लेगा, यदि कोई किसान एक ही कुआँ खोदेगा तो खोदते-खोदते पानी को प्राप्त कर ही लेगा। किन्तु वह खोदते-खोदते जब ऊब जाता है दूसरा खोदता है, तीसरा खोदता है तो उसे जिंदगी भर पानी नहीं मिलता।

हम भी सुख की चाह, सुख की कामना जिंदगी भर करते रहते हैं किन्तु एक रास्ते पर चलते-चलते जब थक जाते हैं तो दूसरे रास्ते पर पहुँच जाते हैं। उस पर चार कदम चलते हैं पुनः रास्ता बदल लेते हैं। तीसरा, चौथा रास्ता बदलते हैं, ऐसे रास्ते बदलते ही रहते हैं, कभी अपनी रफ्तार बदल देते हैं, कभी अपने वाहन बदल देते हैं किन्तु हम एक दिशा में दीर्घकाल तक चल नहीं पाते। यदि हम चल भी पाते हैं तो कोई संगी साथी हो तब ही चल पाते हैं, अकेला मन ऊब जाता है। इस मन को अकेले में रहने की आदत नहीं है, इस तन को भी अकेले में

रहने की आदत नहीं है इस वचन को भी अकेले में बड़बड़ाने की आदत नहीं है। यदि कोई सुनने वाला नहीं है तो दीवारों को, वृक्षों को या अन्य पुद्गल वस्तुओं को सुनाने का प्रयास करेगा या कल्पना में किसी लाक्षणिक व्यक्ति को स्थापित करके अपनी बात को सुनाने का प्रयास करेगा क्योंकि अकेलापन इसे खलता है, अकेलेपन में इसे ऊब पैदा होती है, अकेलेपन से विरक्ति होने लगती है, समूह के बीच में नव-नव प्रसंग दिखाई देते हैं इसलिये व्यक्ति विरक्त नहीं हो पाते।

महानुभाव! यहाँ हमें चर्चा करनी है मुक्ति का पात्र कौन? मोक्ष का अधिकारी कौन? ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो मोक्ष का अधिकारी हो सकता है मुक्ति का पात्र हो सकता है। हर चीज की पात्रता होती है, जो जिसके काबिल होता है वह वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है, या वह उस वस्तु को प्राप्त कर लेता है। जो जिसके काबिल नहीं है उसे वह वस्तु प्राप्त हो भी जायेगी तो अधिक समय तक उसे अपने पास रख न सकेगा। यदि काबिल नहीं है तो अमुक वस्तु को प्राप्त करने की कोशिश भी नहीं करेगा। अंतरंग से कोशिश तभी होती है जब पात्रता हांसिल कर ली जाये। जो जिसके योग्य होता है तो सामने वाला व्यक्ति भी कहता है कि उसकी योग्यता उस लायक है, उसे वस्तु मिलनी चाहिये। फिर वह चाहे कोई भी वस्तु हो या पद जो डिजर्व करता है उसे वह मिलनी चाहिये। जब तक व्यक्ति उसके योग्य नहीं हुआ है तो वस्तु को प्राप्त करने का पुरुषार्थ भी करेगा तो पुरुषार्थ अधूरा रहेगा, यदि बिना पुरुषार्थ के कहीं वस्तु प्राप्त हो गयी तो उसका सदुपयोग ही कर पाये इसमें आशंका होगी।

मुक्ति का पात्र कौन? पात्र सब प्रकार के होते हैं। हम ये भी

तो सोचें कि संसार का पात्र कौन? जो संसार का पात्र है उसके विपरीत अवस्था वाला मुक्ति का पात्र है। संसार में कौन परिभ्रमण कर सकता है, तो कारण दिये कि वह मिथ्यादृष्टि हो। यदि मिथ्यादृष्टि नहीं है तो अनंत काल तक संसार में परिभ्रमण नहीं कर सकता, उसे मोक्ष जाना ही पड़ेगा। भव्य है तो मोक्ष चला ही जायेगा, आज नहीं तो कल चला जायेगा, अभव्य हो तो सांसर में परिभ्रमण करता ही रहेगा। वह कषाय की तीव्रता से युक्त हो यदि कषाय मंद हो गयी तो संसार में परिभ्रमण करना मुश्किल हो जायेगा, जैसे बिना पैरों के कोई व्यक्ति चल नहीं सकता, बिना पंखों के कोई पक्षी उड़ नहीं सकता ऐसे ही राग-द्वेष के दो पंखों के बिना संसार में संसरण, परिभ्रमण हो नहीं सकता। इसलिये संसार का अधिकारी वही है जो मिथ्यादृष्टि है, राग-द्वेष में रमा हुआ है, कषाय की तीव्रता से युक्त है, विषयों में आसक्त है, पाप रूप प्रवृत्ति जिसकी सहज वृत्ति है, जो सदैव पर में लीन रहता है ऐसा व्यक्ति संसार का पात्र है। यदि इनमें से कोई एक योग्यता घटने लगेगी तो संसार में रहना उसके लिये संदेहजनक है, वह चिरकाल तक संसार में रह नहीं पायेगा।

इस संसार के लिये भी अर्हतायें हैं, अब मोक्ष के लिये इसके विपरीत कर दीं। जो इसके विपरीत है वह मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। चलते हैं आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी के पास, वे क्या कहना चाहते हैं मोक्ष के अधिकारी के संबंध में। उन्होंने रयणसार में लिखा है-

**देव-गुरु-समय-भत्ता, संसार-सरीर-भोग-परिचत्ता।**
**रयणत्तय-संजुत्ता, ते मणुया सिव-सुहं पत्ता।।**

'देव-गुरु-समय भत्ता'- सबसे पहली शर्त कही जो वीतरागी सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव के प्रति परम भक्ति से युक्त हो। पंचपरमेष्ठी के प्रति परम भक्ति से युक्त हो। यहाँ भक्ति का भाव कहा, तो परम भक्ति तभी पैदा हो सकती जब उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी हो। सम्यक्त्व बाहर दिखाई नहीं दे रहा, बाहर दिखाई दे रही है सम्यक्त्व की बाह्य पोशाक भक्ति। जिसके अंदर में सम्यक्त्व होगा उसके अंदर में पंचपरमेष्ठी के प्रति भक्ति नियम से होगी ही होगी। जिस पुष्प में सौरभ है, सुगंध है, पराग है उसकी गंध बाहर भी दिखाई देगी। यदि सूर्य का उदय हुआ है तो उसकी किरण बाहर तक आयेगी ही, चन्द्र का उदय हुआ है तो उसकी शीतल चाँदनी बाहर आयेगी ही। आपके अनुभव में पुष्प की सुगंध, चंद्रमा की चाँदनी, सूर्य का प्रकाश आ रहा है तो उनके उदय में कोई संदेह नहीं।

ऐसे ही जिसके चित्त में जिनेन्द्र देव के प्रति, निराकार, निष्कल, परमशुद्ध, देहातीत आत्मगुणों से युक्त सिद्धों के प्रति अनुराग का भाव है, उनमें लीनता का भाव है, चिंतन में मन लगता है तो समझ लेना चाहिये वह व्यक्ति नियम से सम्यग्दृष्टि है। बिना सम्यक्त्व को प्राप्त किये वह जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति वंदना नहीं कर सकता, बिना सम्यक्दर्शन के सिद्धों का ध्यान नहीं कर सकता, सिद्धों के गुणों का चिंतन नहीं कर सकता, सिद्धों में लीन नहीं हो सकता। बिना सम्यक्दर्शन के आचार्य परमेष्ठी का आचरण उसे अच्छा नहीं लगेगा, बिना सम्यक्दर्शन के उपाध्याय परमेष्ठी की देशना उसे सुखद प्रतीत न होगी, बिना सम्यक्दर्शन के साधु की उपासना में मन नहीं लगेगा, साधु के पास बैठने का, आने-जाने का मन नहीं होगा। किन्तु सम्यक्त्व

यदि होगा तो जैसे पुष्प में सुगंध है तो सभी भ्रमर दौड़कर उसके पास आ जाते हैं ऐसे ही सम्यक्त्व होगा तो वह भव्य जीव पंचपरमेष्ठी के चरणों में खिंचा चला आयेगा। सम्यक्त्व यदि होगा तो दीपक पर उड़ने वाले परवाने की तरह से आ जायेगा, पतंगा तो उसमें जलकर के अपने शरीर को खाक करता है किन्तु भव्य जो परवाना बनकर पंचपरमेष्ठी के चरणों में आता है वह केवल इस शरीर को ही नहीं पाँचों शरीरों को नष्ट कर देता है और तीनों प्रकार के कर्मों को नष्ट कर देता है। द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म ये सभी पंचपरमेष्ठी की भक्ति रूपी अग्नि में दहन हो जाते हैं। वह परम सिद्धात्मा बन जाता है।

महानुभाव! इसलिये पहली शर्त रखी देव भक्त हो, पंचपरमेष्ठी का भक्त हो, गुरुभक्त हो। महाराज श्री! जब भी आप कहते हैं तो भगवान् की पूजा की बात कहते हैं या गुरु की सेवा की बात कहते हैं। यदि ये कहें भगवान् की सेवा गुरु की पूजा तो? तो वर्तमान में भगवान् की सेवा के लिये, चैतन्यमय अरिहंत परमेष्ठी नहीं हैं और सिद्ध कभी भी शरीर सहित होते नहीं हैं। सेवा करने का भाव जब भी आता है तो शरीर स्पर्श की बात आती है। जो सिद्ध परमेष्ठी हैं उन्हें स्पर्श कर नहीं सकते, तब केवल उनके गुणों में अनुराग करके उनकी भक्ति स्तुति पूजा वंदना आदि की जा सकती है, सेवा नहीं की जा सकती। और साधु के पास रहकर के यदि पूजा करें, तो पूजा स्तुति-भक्ति वंदना दूर से की जाती है। किन्तु उपासना और सेवा निकट में बैठकर की जाती है। जिनते निकट में बैठेंगे उतने ही हमें उनके गुणों की संप्राप्ति मिलती रहेगी। उनके गुणों की सुगंधि से हमारी आत्मा तुष्ट होगी। यदि पुष्प वाटिका से दूर बैठेंगे तो उसकी

सुगंध पूर्णतः प्राप्त नहीं होगी, अग्नि से दूर बैठेंगे तो उसका ताप हमारी सर्दी को दूर न कर सकेगा इसलिये आचार्य-उपाध्याय-साधु के निकट बैठकर ही हमारे चित्त के विकार तिरोहित होने लगते हैं। उनके निकट बैठकर ही हमें संसार सागर का किनारा दिखाई देने लगता है। उनके पास बैठने से ही हमारे अंदर संयम का भाव जाग्रत होता है। आचार्य उपाध्याय साधु के निकट बैठने से ही हमें संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति होती है, उन्हीं के निकट-बैठने से हमें इन्द्रिय विजय करने की तीव्र उत्कंठा जाग्रत होती है, यदि उनसे दूर रहते हैं तो वह भावना नहीं आती है, इसलिये साधु सेवा व उपासना की बात कही।

साधु सेवा करने से निरोगी शरीर की प्राप्ति होगी, आपको सुंदर रूप की प्राप्ति होगी, वज्रवृषभ नाराच संहनन की प्राप्ति होगी, जिसे प्राप्त करके आप मोक्ष की साधना कर सकते हैं। साधु की सेवा से जब निरोगी शरीर दीर्घायु वाला समुचित शरीर प्राप्त करोगे तभी तो भगवान् की पूजा भक्ति कर पाओगे। यदि वह नहीं प्राप्त हुआ तो कैसे कर पाओगे। इसीलिये आचार्य समंतभद्र स्वामी ने कहा-'तपोनिधिषु' तपस्वियों की पूजा भक्ति करने की बात कही।

**उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।**
**भक्तेः सुन्दर रूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥**

सिद्धान्तविद्, न्यायप्रिय आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जो बड़े ही वाग्मीक थे। उन्होंने गणित के रूप में बात कही है जैसे गणित में आप जानते हैं 2+3=5 होते हैं 2 X 3=6 होते हैं, 3÷3=1 आयेगा। कोई भी गणित है वह नियामक है किसी भी

क्षेत्र में किसी भी काल में, किसी भी व्यक्ति के द्वारा किया जाये। ऐसे ही आचार्यवर ने सूत्र दे दिया- 'उच्चैर्गोत्रं प्रणते' यदि तपस्वियों को प्रणाम करते हैं तो आप बिल्कुल आत्मा के प्रदेशों में उकेरकर लिखकर रख लें कि उसे नियम से उच्चगोत्र की प्राप्ति होगी। विश्व की कोई भी शक्ति उसे नीच गोत्र में नहीं डाल सकती। भोगोदानात्-यदि जीवन में उत्तम-उत्तम भोगों की कामना अभिलाषा है, 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से युक्त भोगों को प्राप्त करने की भावना है या सौधर्म इन्द्र के भोगों को प्राप्त करने की भावना है तो दान दो। आहारादि चारों प्रकार के दान देने से निस्सीम भोगों की प्राप्ति होगी, संसार की कोई भी शक्ति इसे अन्यथा नहीं कर सकती।

'उपासनात्पूजा' यदि आप चाहते हैं मुझे सम्मान मिले, मेरी पूजा हो, प्रतिष्ठा मिले, मुझे सत्कार मिले तो तपस्वियों की उपासना करो, उनके समीप बैठकर के निर्मल परिणाम करके उनके गुणों का चिंतन करो, गुण प्रशंसा करो। उनके शरीर में व्याधि आदि है तो उनकी सेवा करो। इससे निःसंदेह आपका शरीर निरोगी रहेगा और उनकी सेवा उपासना करने से आप भी प्रशंसनीय व पूज्यनीय हो जायेंगे। कई व्यक्ति कहते हैं हमें समाज में कोई जानता नहीं था, किन्तु जबसे साधुओं की सेवा करना प्रारंभ किया है पूरी समाज मुझे केवल पहचान नहीं रही वरन् सम्मान की दृष्टि से भी देखती है। 'भक्तेः सुन्दर रूपं' साधुओं की भक्ति करने से सुंदर रूप की प्राप्ति होती है। 'स्तवनात् कीर्ति' स्तवन करने से कीर्ति की प्राप्ति होती है। यदि अपनी प्रशंसा चाहते हो तो दूसरों की प्रशंसा करना प्रारंभ कर दो। सामान्य व्यक्तियों में तो आपको गुण खोजने पड़ेंगे कौन-कौन

सी अच्छाईयाँ हैं, पर साधुओं में बहुत सारी अच्छाईयाँ दिखाई दे जायेंगी उनमें से कोई भी जो आपको ज्यादा पसंद आ रही है उसकी प्रशंसा करना प्रारंभ कर दो, तुम्हारे अंदर उत्तम गुणों का प्रादुर्भाव होना प्रारंभ हो जायेगा।

महानुभाव! इसलिये कहा-'देव-गुरु-समय भत्ता'। देव के भक्त, उसके बाद शास्त्र नहीं कहा, गुरु भक्त कहा। जिसने गुरु के माध्यम से देशना सुनी है, अपने कल्याण के सूत्रों को सुना है, जिज्ञासा समाधान प्राप्त किया है, वह व्यक्ति शास्त्रों में से सही अर्थों को खोज सकता है। बिना गुरु के शास्त्रों को पढ़कर के कभी समीचीन अर्थ ग्रहण नहीं किये जा सकते गुरु के बिना जितना भी ज्ञान होता है वह संदेह युक्त ही होता है, संशय युक्त होता है, यदि संदेह का, संशय का निवारण होता है तो गुरु वचनों से होता है।

**भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुखचन्द्र तें अमृत झरें।**

गुरु मुख से निःस्रत वचनों से ही संशयों का निदान होता है। गुरु के वचन ही भ्रम रूपी रोग को दूर करने वाले हैं। गुरु के वचनों के माध्यम से ही भव्य प्राणियों का संशय-भ्रम-संदेह अपहरण को प्राप्त होता है। सम्यक्दृष्टियों के चित्त में विद्यमान अज्ञानता, जिज्ञासाओं का शंकाओं का निराकरण करने में गुरु वचन ही समर्थ होते हैं। यहाँ देव के बाद गुरु को लिया पुनः शास्त्र को लिया। आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी की दृष्टि इतनी गहरी रही उन्होंने रूढ़ि वशात् देव-शास्त्र-गुरु नहीं कहा, उन्होंने देव-गुरु-शास्त्र कहा क्योंकि शास्त्र का निर्माण देव और गुरु के माध्यम से होता है। शास्त्रों का निर्माण अकेले देव से नहीं होता, अकेले गुरु से नहीं होता, देव व गुरु दोनों के माध्यम से होता

है। देव की वाणी जो सर्वांग से निःसृत हुयी, जिसे गुरुओं ने शब्दों में लिपिबद्ध किया जो आगम ग्रंथ बन गये। जैसे संतान की वृद्धि अकेले-पुरुष के माध्यम से या अकेले स्त्री के माध्यम से नहीं होती दोनों के माध्यम से होती है इसीलिये पहले माता-पिता का नाम आता है फिर संतान का नाम आता है।

यहाँ पर आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की दृष्टि भी इस प्रकार की हो सकती है कि यदि गुरु नहीं हों तो शास्त्र आयें कहाँ से। अकेले जिनेन्द्र प्रभु के माध्यम से शास्त्र नहीं हो सकते, आप कहेंगे महाराज! जो कोई तीर्थंकर केवली बन गये, उनकी दिव्यध्वनि खिर गयी तो शास्त्र बन गये? नहीं ऐसे नहीं खिरती है। यदि समवशरण में कोई योग्य गणधर न हों, योग्य गुरु न हों तो भगवान् की दिव्य ध्वनि नहीं खिरती। योग्य चाहिये जो दिव्य ध्वनि को झेलने वाला हो। तो गुरुओं के बिना दिव्यध्वनि खिरती नहीं, गुरुओं के बिना कोई संग्रह करता नहीं, गुरुओं के बिना कोई समझ नहीं सकता इसलिये आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी ने कहा मुक्ति का पात्र कौन है? तो पहली शर्त बतायी देव भक्त, गुरु भक्त और समय भक्त।

समय अर्थात् शास्त्र भी होता है, समय मतलब स्वमत भी होता है, समय मतलब धर्म भी होता है जो शास्त्रों का भक्त है, अपने धर्म का उपासक है। महानुभाव! वह देव शास्त्र गुरु का भक्त हो यदि इन तीन का भक्त नहीं तो आगे की विधि प्रारंभ नहीं होगी। जैसे किसी व्यक्ति को बूँदी का लड्डू खाना है तो उसकी शर्त क्या है कि पहले उसके पास चना हो, चना उसके पास है तो उसकी दौल बना ले, पुनः दूसरी प्रक्रिया दौल से बेसन बनाये, पुनः अगली प्रक्रिया बूँदी बनाये चाशनी बनाये। तो पहले चना

हो, यदि चना नहीं होगा तो घी शक्कर क्या करेंगे। ऐसे ही यहाँ पहली शर्त रखी देव-गुरु-शास्त्र का भक्त होना चाहिये, इस शर्त के पूर्ण होने के उपरांत ही दूसरी प्रक्रिया प्रारंभ हो सकती है।

दूसरी बात **'संसार-सरीर-भोग परिचत्ता'** संसार से, शरीर से, भोगों से विरक्त हो। जो संसार, शरीर, भोगों का परित्यागी हो। तो महाराज! वह ऐसे कैसे त्याग कर देगा वह संसार को छोड़ देगा तो रहेगा कहाँ, देह को छोड़ देगा तो आत्मा कहाँ रहेगी और भोगों को छोड़ देगा तो फिर जीयेगा कैसे। किन्तु यहाँ पर आचार्य महोदय का परित्याग से भाव है विरक्ति से। क्योंकि जिसने संसार में विरक्ति के साथ रहना शुरु कर दिया है, उस विरक्ति के साथ संसार में रहना न रहने के बराबर है। देह में रहते हुये भी देह से विरक्त है। वह देह में रहते हुये भी देह में न रहने के बराबर है। और भोगों को विरक्त भाव से शरीर चलाने के लिये ग्रहण करना वह भोजन करते हुये भी न ग्रहण करने के बराबर है। इसलिये कहा 'संसार-शरीर-भोग परिचत्ता।'

आगे कहा **'रयणत्तय संजुत्ता'** रत्नत्रय से संयुक्त हो। तीन शर्त यदि पूरी हैं तब तो मुक्ति का पात्र होना संभव है अन्यथा असंभव है। तीन सीढ़ी पर चढ़कर ही मोक्ष महल की प्राप्ति होगी। पहली सीढ़ी देव-शास्त्र-गुरु के भक्त बन जाना, दूसरी सीढ़ी संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो जाना पुनः तीसरी सीढ़ी है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त कर लेना। तीसरी सीढ़ी पहले व्यवहार की है पुनः निश्चय को प्राप्त कर लिया तो सामने ही मोक्ष है।

महानुभाव! मोक्ष की प्राप्ति ऐसे नहीं होती। यदि संसार-शरीर-भोगों में आसक्त रहते हुये, विषयों का सेवन करते हुये, पापों में

प्रवृत्ति करते हुये संसार से मोक्ष हो जाता तो सभी प्राणी मोक्ष को प्राप्त हो चुके होते। भव्य होते हुये भी उन्हें पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहा-

**जिणसासणेऽणुरत्ता, विरत्ता हु भव-सरीर-भोयादो।**
**रयणत्तयेण जुत्ता, णिव्वाणं पत्ता ते साहू।।**

मोक्ष सुख का पात्र कौन सा साधु है तो बता रहे हैं जो जिन शासन में अनुरक्त है, जिनशासन से आशय जिनेन्द्र भगवान्, पंचपरमेष्ठी, देव-शास्त्र-गुरु व धर्म भी आ गया। यदि किसी भी जिनशासन के अंग में (नवदेवता) कोई भी जहाँ कहीं भी अनुरक्त है, तो पहली शर्त पूर्ण हो गयी वह मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बन सकता है। पहली शर्त पूरी किये बिना दूसरी-तीसरी शर्त पूरी नहीं की जा सकती। दूसरी शर्त भव से, देह से, भोग से परम विरक्त हो। एक विरक्ति सहज होती है, सामान्य होती है। सामान्य विरक्ति से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। आपने भोजन कर लिया पेट भर गया अब भोजन सामग्री से आपकी विरक्ति हो गयी, अब आपको भोजन सामग्री नहीं चाहिये किन्तु वह परम विरक्ति नहीं है। शरीर में रोग हो गया और आप बहुत दुःखी हो गये तो शरीर से विरक्त होकर कहने लगे इससे तो शरीर छूट जाये तो अच्छा है, तो यह परमविरक्ति नहीं है। भोगों को भोगकर के आपके मन में ग्लानि का भाव पैदा हुआ क्षणभर के लिये भोग भोगकर के विरक्ति हो गयी तो वह भी परम विरक्ति नहीं वह तात्कालिक विरक्ति होती है। तात्कालिक विरक्ति से कभी मोक्षमार्ग प्रारंभ नहीं होते। जब तक वह तात्कालिक विरक्ति सुचिरकाल के लिये स्थायी रूप ना ले ले तब तक मोक्ष मार्ग की प्राप्ति असंभव है।

अगली बात कही 'रयणत्तयेण जुत्तो' दोनों प्रकार के त्रिरत्न से युक्त अर्थात् एक प्रकार से **"देव-शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार"** अथवा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र रूपी तीन रत्न। उभय से आशय या तो ये दोनों प्रकार के त्रिरत्न लिये जा सकते हैं। किन्तु यहाँ पर दूसरा अर्थ और भी लिया जा सकता है व्यवहार रत्नत्रय से युक्त और निश्चय रत्नत्रय से भी सहित। यदि व्यवहार रत्नत्रय का पालन करते-करते कुछ कम एक पूर्व कोटि तक भी साधना करता रहे तब भी कैवल्य की प्राप्ति न होगी, तब भी उसे मोक्ष की प्राप्ति न होगी, जब तक वह निश्चय में नहीं डूबेगा। तो पुनः कहा कि निश्चय की प्राप्ति भी अनिवार्य है। बिना निश्चय रत्नत्रय के कोई भी जीव अपनी आत्मा को परमात्मा नहीं बना सकता।

यहाँ पर 'साधु' शब्द कहने से ये निराकरण कर दिया कि मोक्ष का साक्षात् अधिकारी श्रावक नहीं है और साधु शब्द कहने से तीन गतियों का भी निराकरण कर दिया कि नरक, तिर्यंच व देव इन तीन गतियों में साधु पाये नहीं जाते। साधु कहने से भोग भूमि-कुभोगभूमि का निराकरण भी कर दिया। 'णिव्वाणं पत्ता सो साहू' वह साधु ही मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

महानुभाव! यदि दुःख आपका छूट गया, दुःख का कारण स्वयं छूट गया तो उसे मोक्ष सुख नहीं मिलेगा। जब तुमने पुरुषार्थ करके तपस्या करके, संयम की साधना करके कर्मों का संवर किया है और निर्जरा की है, उस निर्जरा के माध्यम से (अविपाक निर्जरा) जिस पथ की प्राप्ति होती है वही मोक्ष पथ है। जिस आत्मा में संवर तत्त्व विद्यमान है और जिस आत्मा में अविपाक निर्जरा विद्यमान है ऐसी आत्मा ही मोक्ष की अधिकारी है।

संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि मोक्ष सुख का पात्र वह बनेगा जो कर्मों को छोड़ेगा। कर्मों को छोड़ने के लिये जो संकल्पित हो गया है, संसार-शरीर भोगों को छोड़ने के लिये संकल्पित हो गया है वही संकल्पशील साधु मोक्ष का पात्र हो सकता है। जिसने संसार को छोड़ने का संकल्प नहीं लिया, मोक्ष मिल जाये तो ठीक न मिले तो कोई गिला-शिकवा नहीं तो ऐसे व्यक्तियों को मोक्ष नहीं मिलता। मोक्ष तो तभी मिलता है जब मन में इतनी तीव्र भावना पैदा हो जाये जिस तीव्र भावना को दबाया न जा सके, जिस भावना को बदला न जा सके उस भावना के बहाव में बहते चले जाने से ही मोक्ष का मार्ग प्राप्त होता है। किसी तिनके के नदी के किनारे पर खड़े होने मात्र से समुद्र की यात्रा संभव नहीं है, जब वह तिनका स्वयं को उस नदी में समर्पित करता है, उसके तीव्र बहाव में बहता चला जाता है किनारों के सम्मान-अपमान को ध्यान में नहीं रखता तब वह तिनका बहता हुआ सरिता के जल के साथ समुद्र तक पहुँच जाता है।

ऐसे ही वैराग्य और भक्ति के, संयम और रत्नत्रय के भावों के तीव्र प्रवाह में जो भव्यात्मा बहती हुयी चली जाती है वही वास्तव में मोक्ष निलय (सिद्धालय) तक पहुँचने में समर्थ होती है वही मोक्ष की पात्र होती है। आप सभी भी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, कभी हिम्मत न हारें। यदि आप ये सोच लेंगे कि मोक्ष तो चौथेकाल में होता था आदिनाथ, शांतिनाथ महावीर स्वामी जैसे महापुरुष ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, बड़े-बड़े साधक ही कर सकते हैं तो ऐसा नहीं है तुंगभद्रा नाम की एक कन्या ने मौन एकादशी व्रत का पालन किया अगले भव में उसने

सुकौशल होकर के अपने पिता कीर्तिधर के साथ कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर लिया। सुभग ग्वाले ने मोक्ष प्राप्त करने की भावना भायी अगले भव में सुदर्शन सेठ बनकर मोक्ष प्राप्त कर लिया। मोक्ष प्राप्त करने के लिये ऐसा जरूरी नहीं है कि सुचिरकाल तक कई बार मुनि बनना पड़ेगा, तपस्या करनी पड़ेगी, तब जाकर मोक्ष मिलेगा। यदि मोक्ष प्राप्त करने का संकल्प है तो एक बार में ही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है, जरूरी नहीं है कि 100 बार प्रयास करो तब ही सफल हों, चींटी दीवार पर चढ़ती है एक बार में भी चढ़ सकती है, कई बार में भी चढ़ सकती है चढ़ने का संकल्प जितना सुदृढ़ होता है उतनी शीघ्र सफलता प्राप्त हो जाती है।

आप सभी लोग मुक्ति के पात्र बनें, मोक्ष के अधिकारी बनें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ....।।

**॥श्री शांतिनाथ भगवान् की जय॥**